ओ३म्
तक-त्रयी
अग्नि, इन्द्र, सोम देवता परक तीन सौ
मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह
दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली-५

महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों की पूर्ति के लिए
धरती पर वैदिक विचारधारा का साम्राज्य
स्थापित करने के लिए

=००=

गीता प्रेस जैसा शक्तिशाली वैदिक
साहित्य प्रकाशन संस्थान बनाने के लिए
अधिक से अधिक सहयोग देकर

—पंजीकृत न्यास—

"दयानन्द-संस्थान" के सदस्य बनिये

१००१)	प्रति वर्ष	देकर	"संरक्षक-सदस्य"
५०१)	"	"	"पोषक-सदस्य"
२५१)	"	"	"प्रेरक-सदस्य"
१०१)	"	"	"संचालक-सदस्य"
५१)	"	"	"दाता-सदस्य"
२५)	"	"	"सहायक-सदस्य"
११)	"	"	"प्रचारक-सदस्य"

आप का सहयोग ही हमारी शक्ति है।

विनीत –
अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान,
नई दिल्ली-५

दूरभाष : ५६६६२९

इस ग्रंथ के प्रकाशन में श्रीमती सावित्री शर्मा ने आर्थिक सहयोग दिया। हम उनके आभारी हैं --संपादक

जन-ज्ञान प्रकाशन का ८७वां पुष्प

ओ३म्

शतक-त्रयी

अग्नि-इन्द्र-सोम देवता परक मंत्रों के तीन शतक

३०० मंत्रों का संग्रह

श्री पं० शिवदयालु जी

जन - ज्ञान - प्रकाशन
नई दिल्ली-५

प्रकाशक :

जन-ज्ञान प्रकाशन

फोन ५६६६३६

१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

卐

मूल्य—एक रु०

卐

नवम्बर १९७२

मुद्रक :

सैनी प्रिण्टर्स,

पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

भूमिका

आज हम अपने पाठकों की सेवा में यह "अग्नि-इन्द्र-सोम" शतक त्रयी प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे पूर्व गायत्री-शतक माँ-गायत्री के नाम से जन-ज्ञान-प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

वेदों के सम्बन्ध में सर्वसाधारण में यह धारणा घर कर गई है कि वेदों की उत्पत्ति तो केवल यज्ञ हवन अग्नि होत्र आदि के लिये ही हुई है। इस सम्बन्ध में 'यज्ञार्थं सृष्टाः वेदा' यह उद्घोष किया जाता रहा है। किन्तु यज्ञ शब्द से तात्पर्य तो पूजनीय परमात्मा राष्ट्र-सेवा, समाज-सेवा, भूमिमाता व गोमाता की सेवा, माता-पिता आचार्य की सेवा सत्संग प्रवचन वेदाध्ययन अध्यापन आदि से है। यज्ञ शब्द का यह नैरुक्तिक अर्थवाद इस युग में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने आकर संसार के समक्ष उपस्थित किया है।

अग्नि इन्द्र सोम आदि शब्द वेदों में प्रधान रूप से परमात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं उसके विभिन्न गुणों एवं शक्तियों के बोधक हैं। मध्यकालीन आचार्यों एवं उनका अनुकरण करने वाले पाश्चात्य विद्वानों ने इन शब्दों का अर्थ Fire, Sun, Moon a Soma-juice आदि ही किया है।

ऋग्वेद में अग्नि इन्द्र सोम देवता परक मन्त्र सर्वाधिक हैं। इन तीन देवता परक मन्त्रों की संख्या ५००० से ऊपर ही है अर्थात् ऋग्वेद के लगभग आधे मन्त्र अग्नि सोम देवता वाले ही हैं।

मन्त्र-शतक मालाकी भान्ति हमने मन्त्रोपनिषद् माला भी प्रकाशित करने का संकल्प किया हुवा है। ऋषि दयानन्द ने केवल ईश केन कठादि उपनिषदों को आर्ष माना है। वैसे श्वेताश्वतर एवं मैत्रायणी उपनिषदों के मन्त्रों को उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में अपने पक्ष की पुष्टि में उद्धृत किया है। ऋषिवर ने जिन १० उपनिषदों को आर्ष माना है उनमें केवल ईशोपनिषद् ही मन्त्रोपनिषद् है जो यजुर्वेद का ४० वां अध्याय है और किञ्चित् परिवर्तन के साथ विद्यमान है शेष ६ उपनिषदें विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों के आरण्यक भागों से उद्धृत किये गये हैं। मन्त्रोपनिषद् से हमारा तात्पर्य यहाँ वेद के अध्यायों तथा सूक्तों को एवं छन्द, देवता व ऋषिपरक मन्त्रों को उपनिषद् रूप में प्रकाशित करने से है। वैसे मन्त्र से तात्पर्य वेद ब्राह्मण व कल्प ग्रन्थों के गद्य व पद्य

भागों से है। ऋषि दयानन्द की भी संस्कार विधि आदि ग्रन्थों में ऐसी ही मान्यता है। इस दृष्टि से आर्ष उपनिषदों की संख्या पर्याप्त बढ़ जाती है। ऋषि दयानन्द के उपरान्त अनेक आर्ष उपनिषदें प्रकाश में आई हैं और भविष्य में आयेंगी। आर्ष और अनार्ष उपनिषदों की संख्या बादशाह शाहजहाँ के सुपुत्र दाराशिकोह के मत में ५० है जिन का उसने फारसी भाषा में अनुवाद किया वा कराया था। महावाक्य मुक्तावली के अनुसार संख्या १०८ है। आचार्य मोक्षमूलर के अनुसन्धान के अनुसार उनकी संख्या १४९ है और प्रोफेसर हाग के अनुसार १७० है। प्रोफेसर वेबर ने अपनी History of Sanskrit Literature में उपनिषदों की संख्या २३५ लिखी है। जैसे-जैसे प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की खोज बढ़ेगी यह संख्या भी और बढ़ेगी। इन उपनिषदों में ब्राह्मण ग्रन्थों में उद्धृत उपनिषदों की संख्या भी पर्याप्त है। कुछ छागनेयादि उपनिषदें वेद मन्त्रों के संग्रह रूप में भी हैं।

हम तो केवल अपनी परिभाषा के अनुसार मन्त्रोपनिषदों को ही प्रकाश में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं। ब्राह्मण व आरण्यक ग्रन्थों को अभी हाथ नहीं लगा रहे।

जन ज्ञान प्रकाशन ने हमारी उपनिषद् त्रयी भी प्रकाशित की है जिस में शुक्ल यजुर्वेद के अध्याय ३१, ३२ व ३६ को पुरुषोपनिषद् ब्रह्मोपनिषद् तथा देवोपनिषद् के रूप में हमने प्रस्तुत किया है। हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है। इसी प्रकार वेदों के छन्द देवता व ऋषि परक आध्यात्मिक अर्थ प्रधान मन्त्रों के संग्रहों को उप, निषद् रूपमें प्रकाशित करनेका हमारा संकल्प है, यह औपनिषदिक ज्ञान-ही संसार का भावी धर्म होगा और मानव की संतप्त आत्मा को सच्ची शान्ति प्रदान करेगा ऐसा माननीय शोपनहार का मत है जिसका हम समर्थन करते हैं। हमारी यह शतक त्रयी मानव जीवन में आध्यात्मिक मद (सरूरे वहदानियत) को उत्पन्न करने वाली हो यही हमारी मनोकामना है।

प्रस्तुत तीनों शतकों में १००-१०० मंत्र संग्रहीत किए हैं। पाठ-स्वाध्याय-यज्ञादि में यह उपयोगी होगा विश्वास है—

—शिवदयालु आर्य

अग्नि शतकम्

अग्नि शब्द अञ्चु, अग, अगि, इण आदि गत्यर्थक धातुओं से सिद्ध होता है। ये धातु ज्ञान, गमन, प्राप्ति, पूजन, अर्थों वाले हैं अतः अग्नि से तात्पर्य "योऽञ्चति अच्यते अगति अङ्गति" इत्यादि है अर्थात् जो ज्ञान, प्रकाश और ज्योतिः स्वरूप है, सर्वज्ञ है तथा जानने, प्राप्त करने व पूजन करने योग्य है। अतः अग्नि शब्द प्रधान रूपेण परमात्मा का बोधक है।

वैसे तो ऋग्वेद में १४०० के लगभग मन्त्र अग्नि देवता परक हैं किन्तु यहाँ हमने इस शतक में केवल १०० मन्त्रों का जो प्रधानतया परमात्मा परक अर्थों वाले हैं, संग्रह किया है और संक्षेप में उनका अर्थ भी साथ में दिया है। अग्निहोत्र में इन ऋचाओं का पाठ कर आहुतियाँ प्रदान करते हुए तथा इन मंत्रों के अर्थों पर दृष्टि रखते हुए भौतिक अग्नि में यजन करते २ मानव अपने अन्दर आध्यात्मिक अग्नि को प्रबुद्ध करने में समर्थ हो सकता है। इस प्रक्रिया में मन मन्दिर में ज्ञानाग्नि, ब्रह्माग्नि नाचिकेताग्नि, जागृत की जा सकती है और 'अग्निना अग्निः समिध्यते' इस तत्व ज्ञान को साकार रूप दिया जा सकता है। हमने यथासंभव ऋग्वेद के मण्डल क्रम से यहाँ मन्त्रों का चयन किया है।

१. अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ १।१।१।

(अग्निं ईडे) मैं उस दिव्य ज्योतिः के परम आकार परमात्मदेव का स्तवन करता हूँ जो (पुरोहितं) सदा हमारा कल्याण करने वाला मार्ग-दर्शक है। (यज्ञस्यदेवं) हमें परोपकारादि श्रेष्ठतम कर्मों का बोध कराने वाला (ऋत्विजं) और हमें दिव्यप्रकाश का देने वाला है। (होतारं) तथा

हमारे इस जीवन-यज्ञ का होता है अर्थात् इसको सम्पन्न कराने वाला है १. (रत्नधातमं) और दिव्य आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक रत्नों का भण्डार है ।

२. अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ १।१।२।

(अग्निः) विश्व-नियन्ता ज्ञान-स्वरूप दिव्य-प्रकाशका दाता परमात्मा (पूर्वेभिः ऋषिभिः) महान् ज्ञानी, क्रान्तदर्शी अग्रगण्य ऋषियों अर्थात् सिद्ध पुरुषों द्वारा (उत) तथा (नूतनैः ऋषिभिः) वेद का अध्ययन करने वाले तपोनिष्ठ साधकों द्वारा (ईड्यः) स्तुति किये जाने योग्य हैं। वन्दना और अर्चना का पात्र है । (सः) वही परमात्मदेव (इह) इस संसार में (देवां) दिव्यगुणों एवं दिव्यशक्तियों को उनके अन्दर (आवक्षति) प्रकाशित करने वाला है । श्रेष्ठतम कर्मों का बोध कराने वाला तथा पवित्र श्रेयः मार्ग पर प्रगति करने की उनको क्षमता प्रदान करने वाला है ।

३. अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ १।१।३।

(दिवे दिवे) प्रतिदिन नियम पूर्वक (अग्निना) सर्वज्ञ परमात्मदेव की स्तुति प्रार्थनोपासना द्वारा (रयिं) दिव्य ऐश्वर्य तथा (पोषं) पुष्टि-कारक भौतिक पदार्थों का (एव) निश्चय पूर्वक (अश्नवत्) उपभोग करो । यह दैवी ऐश्वर्य निश्चय ही । (यशसं) मानव जीवन को यशस्वी वनाने वाला है और मानव के (वीरवत्तमम्) शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक वलों की वृद्धि करने वाला है ।

४. अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।
स इद् देवेषु गच्छति ॥ १।१।४।

(अग्ने) हे ज्ञान और गति के केन्द्र (यं अध्वरं यज्ञं) आपतो निश्चय ही हमारे स्वार्थ व हिंसा रहित परोपकार कर्मों में (विश्वतः) नाना प्रकार

से (परिभूरसि) विराजमान रहने वाले हो । उन यज्ञों की आप तो निश्चय रक्षा करने वाले हो (स इद्) हमारा वह त्यागमय यज्ञीय कर्म निश्चय (देवेषु गच्छति) हमें जीवन में दिव्यता प्रदान करने वाला है ।

५. अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरा गमत् ॥ १ । १ । ५ ।

(अग्निः) पूर्णज्ञानमय सर्व प्रकाशक परमेश्वर (होता) समस्त जीवनोपयोगी पदार्थों का दाता तथा सर्व प्राणियों को अपने भीतर धारण करने वाला (कविक्रतुः) पूर्णज्ञानमय होते हुए सकल संसार का रचयिता (सत्यः) सब सत्तावान् जड़ चेतन तत्वों में रमण करने वाला (चित्रश्रवस्तमः) अद्भुत् ज्ञानी व यशस्वी प्रभु (देवः) सब ज्ञानादि दिव्य पदार्थों का प्रकाशक है । वह (देवेभिरागमत्) अपने दिव्य गुणों से हमें प्राप्त हो अर्थात् अपने दया न्याय आदि दिव्य गुणों को हमारे अन्दर प्रस्फुटित करे ।

६. यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ १ । १ । ६ ।

(अंग अग्ने) हे सर्वव्यापक सर्वप्रकाशक ज्योतिस्वरूप प्रभो ! (त्वं) आप (दाशुषे) दानशील आत्मसमर्पण करने वाले मानव का निश्चय ही (भद्रं करिष्यसि) कल्याण करने वाले हो । (एतत्) यह तो (तव) आपका (अंगिरः) हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापने वाले प्रभो ! (सत्यं) सत्यव्रत है ।

७. उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयं ।
नमो भरन्त एमसि ॥ १ । १ । ७ ।

(अग्ने) हे दिव्य प्रकाश के परम आगार प्रभो ! (दिवे २) प्रति दिन नियम पूर्वक (दोषावस्तर) सायं और प्रातः काल की सुहावनी वेलाओं में (वयं) हम उपासक जन (त्वा) आपकी (नमो भरन्तः) श्रद्धा भक्ति को हृदय में धारण कर (उपएमसि) उपासना करते हैं ।

८. राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ।
वर्धमानं स्वे दमे ॥ १ । १ । ८ ।

(अध्वराणां) हिंसा आदि दोषों से रहित दिव्य कर्मों का तथा (ऋतस्य) मानव जीवन के उत्थान सम्बन्धी समस्त दिव्य नियमों का (गोपां) रक्षण करने और (दीदिविम्) उनका प्रकाश करने वाले (राजन्तं) तथा अपने निज दिव्य प्रकाश से स्वयं सदा युक्त रहने वाले (स्वे दमे) अपने वैश्वानर, तैजस्, प्रज्ञान और आनन्द धामों में सदा (वर्धमानं) अपनी अद्‌भुत् महिमा से आप विराजमान रहने वाले हो ।

९. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ १ । १ । ९ ।

(सः) ऐसे दिव्य गुणों से वर्तमान (अग्ने) हे प्राणाधार ज्योतिः स्वरूप प्रभो ! (पिता इव सूनवे) जिस प्रकार जन्म दाता पिता अपने पुत्र को (सूपायनोभव) सदा सुख समृद्धि से युक्त करता और उसको सदा सरलता से उपलब्ध होता है उसी प्रकार हे दीनवन्धो ! (नः) हम अपने उपासकों को (स्वस्तये) दिव्य कल्याण वा मंगल की प्राप्ति के निमित्त (आ सचस्व) सव प्रकार से आप भी उपलब्ध होवो ।

१०. अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः ।
स वेद यज्ञमानुषक् । ३ । ११ ।१ ।

(अग्नि) ज्योतिः स्वरूप परमेश्वर (अध्वरस्य) हमारे पूर्ण अहिंसामय निस्वार्थ भाव से किये गये कर्मों को (होता) स्वीकार करने वाला है (पुरोहितः) तथा हमारा मार्ग दर्शक है । (विचर्षणिः) और निश्चय वह अपनी दिव्य-दृष्टि से हमारे क्रिया कलापों को देखने वाला है । (सः) वह परमात्मदेव (यज्ञं) हमारे यज्ञीय कर्मों को (आनुषक् वेद) अनुकूलता से यथातथ्य जानने वाला है ।

११. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ । १२ । १ ।

(अग्निं) उस दिव्य प्रकाश स्वरूप परम पावन प्रभु को (अस्य यज्ञस्य) जो इस सृष्टि रचना और सञ्चालन रूपी महान् यज्ञ का (होतारं) विस्तारक तथा (दूतं) परम रक्षक है। ऐसे उस महान् प्रभु को जो (विश्ववेदसं) सकल विश्व का ज्ञाता और स्वामी है। (सुक्रतुं) तथा जो आश्चर्यंजनक दिव्य कर्मों व शक्तियों का केन्द्र है (वृणीमहे) हम उपासकजन आत्म-कल्याण की भावना से श्रद्धा समन्वित हो वरण करते हैं।

१२. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ १ । १२ । २ ।

(पुरु प्रियं) ज्ञानीजनों को जो प्राण प्रिय है तथा (हव्यवाहं) उनके भक्ति समन्वित स्तोत्रों का श्रवण करने वाला है (विश्पतिं) और सकल प्रजाओं का पालन हार है। (अग्निं) विश्व का नियन्ता है (अग्निं) तथा विश्व को प्रकाशित करने वाला है ऐसे उस दिव्य देवता का (हवीमभिः) हम अपने तप, त्याग और बलिदान की पवित्र भावनाओं से पवित्र आहुतियों से सदा (हवन्तः) सदा यजन करते हैं।

१३. अग्ने देवां इहावह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
असि होता न ईड्यः ॥ १ । १२ । ३.

(अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप परमात्मा ! (जज्ञानः) आपका यह दान दया का यज्ञ सतत चलने वाला है। (इह वृक्त बर्हिषे) हमारी इस त्यागमय जीवन की पावन वेदी में (देवां आ वह) दिव्यगुणों के शाकल्य को जुटाओ। आप (नः) हमारे (होता) मार्ग-दर्शक हो तथा (ईड्यः) एक मात्र उपास्य देव हो।

१४. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीव चातनम् ॥ १ । १२ । ७ ।

(कविं अग्निं) क्रान्तदर्शी उस दिव्यदेव का, (उपस्तुहि) उसके समीप मेंपहुँच कर अर्थात् अज्ञानावरण को हटा कर हम स्तवन करते हैं। (अध्वरे) अपने इस यज्ञीय अहिंसामय जीवन में (सत्यधर्माणं) सत्यधर्म का सनातन-तत्वज्ञान का उपदेश करने वाले दिव्यदेव का वन्दन करते हैं। (अमीव चातनम्) दुष्ट दुर्गुणों पापवृत्तियों का नाश करने वाले उस (देवं) दिव्य-देव का हम अर्चन करते हैं।

१५. यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ १ । १२ । ८ ।

(देव अग्ने) हे दिव्य गुणों के परमागार प्रकाश स्वरूप विश्व नियन्ता प्रभो ! (यः) जो (हविष्पतिः) परोपकारादि निष्काम कर्मरूपी पक्षों में आहुत किये जाने वाले शुद्ध सात्विक द्रव्यों का उत्पादक व संरक्षण करने वाला है वह (त्वां दूतं) आप ज्ञान के दाता और शत्रुओं का संहार करने वाले प्राणनाथ प्रभु की (सपर्यंति) उपासना करता है (तस्य) उस उपासक के (प्रअविता भवस्म) निश्चय आप विशेष रूप से रक्षा करने वाले हैं।

१६. यो अग्निं देववीतये हविष्मां आविवासति ।
तस्मै पावक मृडय ॥ १ । १२ । ८ ।

(यः) जो (हविष्मान्) अन्नादि पदार्थों का स्वामी होकर (देव-वीतये) श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषों को तृप्त करने और उनमें उत्तम गुणों का सम्पादन करने के लिये (अग्नि) परम पूज्य परमात्म देव की (आवि-वासति) सम्यक् प्रकार से आराधना करता है। हे (पावक) शुचिता प्रदान करने वाले उपासनीय प्रभो ! (तस्मै) उसको (मृडय) आन्तरिक शान्ति और दिव्य सुख से युक्त करो ।

१७. स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवां इहावह।
उपयज्ञं हविश्च नः ॥ १ । १० । १०

हे (पावक अग्ने) मानव जीवन को पवित्र करने वाले ज्योतिः स्वरूप प्रभो ! (दीदिवः) आप तो निश्चय ही दिव्य प्रकाश के अद्वितीय आगार हो। (सः) ऐसे आप (नः) हमें (देवां इह आवह) दिव्य गुणों से इस जीवन में भली प्रकार युक्त करदो। (यज्ञं) जीवन में किये जाने वाले यज्ञीय कर्मों तथा उनमें डाली जाने वाली आत्मत्याग रूपी आहुतियों से हमें (उप वह) सम्पन्न करदो।

१८. अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १ । १२ । १२ ।

(अग्ने) हे जीवनोद्धार कर्त्ता प्रभो ! (विश्वाभिः देव हूतिभिः) नाना दिव्य वैदिक ऋचाओं द्वारा संसार के ज्ञानी ध्यानी जन सदा आपका वन्दन करते हैं तथा हम उपासक जन जिन स्तोत्रों का ज्ञान-पूर्वक पाठ करते हैं, (इमं नः स्तोमं जुषस्व) हे नाथ ! आप हमारे इन स्तवनों को अंगीकार करो और (शुक्रेण शाचिषा) अपने अत्यन्त पवित्र दिव्य तेज से, अपने वरण करने योग्य दिव्य "भर्ग" से हमारी पाप वासनाओं को दग्धकर हमें दिव्य जीवन प्रदान करो।

१९. अग्ने सुखतमे रथे देवां ईडित आवह।
असि होता मनुर्हितः। १। १३। ४।

(अग्ने) हे दिव्य ज्योतिः के असीम भण्डार प्रभो ! (देवां ईडिते) संसार के ज्ञानी जन जिसकी कामना करते हैं, (सुखतमे रथे) उस दिव्य सुख सम्पन्न जीवन-रथ द्वारा उस दैवी नौका द्वारा (आ वह) हमें श्रेष्ठ पथ का पथिक बनाओ। (अग्नि होता) आप हमारे इस जीवन यज्ञ के होता हो उसको सफल बनाने वाले हो। (असि मनुः) श्रद्धालु ज्ञानी जनों द्वारा मनोयोग द्वारा जानने योग्य हो और (असिहितः) निश्चय ही आप सकल प्राणी जगत् के परम हितकारक हो।

२०. अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्य नाम।
कोस नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं
मातरं च ॥ १ । २४ । २

(वयं) हम उपासक जन (अग्ने देवस्य) ज्योतिः स्वरूप परमात्मदेव का, (अमृतानां प्रथमस्य) जो अजर अमर अविनाशी द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ है तथा जो उनमें सूक्ष्मतम होने से रमा हुआ है उनमें व्याप रहा है उसके(चारूनाम मनामहे)प्रिय-पवित्र और श्रेष्ठतम "प्रणव" नाम का अपने मन में मनन करते हैं। (सः) वह प्रभु (नः) हम जीवों को (पुनः) बारम्बार (मह्या अदितये) महा महिमामयी माता वसुन्धरा पर (दात्) जन्म देता है (पितरं मातरं च दृशेयम्) और माता-पिता के दर्शन कराता है अर्थात् निर्माण और पोषण करने वाली जननी और जनक की सुखमयी गोद में बिठलाता है।

२१. अग्ने विवस्वदुषसश् चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवां
उषबुंधः ॥ १ । ४४ । १ ।

(जातवेदस् अग्ने) हे निखिल उत्पद्यमान विश्व के जाननेहार प्रभो! (अमर्त्यः) आपतो सदा जन्म-मरण के चक्र से दूर रहने वाले हो।(उषसः विवस्वत्) उषा काल में उदित होने वाले आदित्य के समान (चित्रं राधः) अद्‌भुत ऐश्वर्य से युक्त हो। (उषबुंधः) ज्योतिष्मती प्रज्ञा बुद्धि के उत्पन्न होने पर ज्ञानी जनों को विशेष रूप से आत्मबोध कराने वाले हो (त्वं अद्य) आप शीघ्रातिशीघ्र (दाशुषे) तप त्यागमय जीवनयापन करने वाले अपने भक्तजनों को (देवाँ) दिव्य गुणों व सम्पत्तियों से (आ वह) सम्यक् प्रकार से युक्त करो।

२२. होतारं विश्ववेदसं सं हित्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरूहूत प्रचेतसोऽग्ने देवां इह
द्रवत् ॥ १।४४।७।

(विश्ववेदसं होतारं) सकल विश्व के जाननेहारे तथा विश्व-कल्याण के विधाता (त्वं) तुझ प्रभु को (विश) सारी प्रजाएँ (हि) निश्चय पूर्वक (सं इन्धते) भली प्रकार से अपने मन मन्दिर में ध्याती हैं। आपकी दिव्य ज्योति का अपने मन में संवर्धन करती हैं। (पुरूहूत अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप प्रभो ! आप तो पुरूहूत हो अर्थात् मानव नाना प्रकार से आपका अपने मन-मन्दिर में आह्वान करते आपके स्तवन व कीर्तन करते हैं। (सः) सो आप (प्रचेतसो देवान्) ब्रह्मवर्चस्वी ज्ञानी जनों को (इह) इस हमारे राष्ट्र में (आ द्रवत्) विशेष रूप से अवतरित करदो।

२३. पतिर्ह्यध्वराणामग्ने इतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवां अद्य
स्वर्दृशः ॥ १।४४।९।

(अग्ने) हे अनन्त आध्यात्मिक प्रकाश वाले ! आप तो (हि) निश्चयपूर्वक (अध्वराणां पतिः) अहिंसा सत्यादि श्रेष्ठव्रतों के पालनहार हो। (विशां) सकल प्रजा के (दूतोऽसि) दूत हो अर्थात् उसके हृदय में सदा सत् प्रेरणा देने वाले हो। (उषर्बुधः) आप तो ज्योतिष्मती बुद्धि द्वारा प्रबुद्ध किये जाने वाले हो तथा (स्वर्दृशः) अन्तरात्मा में परिदृष्ट होने वाले हो (देवां) सो अपने दैवीगुणों से सम्पन्न साधकों को (अद्य) शीघ्र से शीघ्र (सोमपीतये) आध्यात्मिक मधु अर्थात् वहदानियत के मद का पान करने में (आ वह) समर्थ करो।

२४. अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्
स्वस्तिभिरति दुर्गाणी विश्वा।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी
भवा तोकायतनयाय शंयोः॥ १। १७९। २।

(अग्ने) हे परम पूज्य उपास्यदेव (त्वं नव्यः) आप तो सदा एक समान बल विक्रम व तेज से युक्त रहने वाले हो। (अस्मान्) हम सब अपने उपासकों को (विश्व अति दुर्गाणि) सकल विकट संकटों से (स्व-स्तिभिः पारया) अपनी कल्याण कारिणी शक्तियों द्वारा पार लगाने वाले हो। (नः) हमारे (पूश्च वहुला उर्वी पृथिवी च)नगर तथा विस्तृत उर्वरा भूमिको सुख समृद्धि से (भवा) युक्त कर दो। (तोकाय तनयाय) हमारे राष्ट्र के वालकों और युवकों को (शंयोः भवा) सुख, शान्ति, समृद्धि से युक्त करदो।

२५. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां
ते नम उक्ति विधेम॥ १।१७९। १।

(अग्ने) हे परम प्रकाश स्वरूप प्रभो ! (अस्मान्) हम अपने भक्तों को (सुपथा) श्रेष्ठ मार्ग से तथा श्रेष्ठ उपायों द्वारा उपलब्ध (राये) धन सम्पत्ति ऐश्वर्य की(नय)प्राप्ति कराओ ! (देव)हे परमज्ञानी प्रभो ! (विश्वानि) हमारे सव (वयुनानि) कर्मों को (विद्वान्) आप जानने वाले हो। हे प्रभो ! (अस्मत्) हम को (जुहुराणं) कुटिल (एनः) पापकर्मों से (युयोधि) युद्ध करने की क्षमता प्रदान करो। हम सव उपासक जन (ते) आपकी (भूयिष्ठां) वारम्वार (नमः उक्ति विधेम) वन्दना करते हैं। अपनी श्रद्धा समन्वित भक्ति पुष्पों की अञ्जली आपको भेंट करते हैं।

२६. त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥ ३ । १० । १ ।

(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप जीवन दातार प्रभो ! (मनीषिणः) मन पर नियन्त्रण करने वाले मननशील मानव (चर्षणीनाँ सम्राजं) समस्त प्रजाओं पर शासन करने वाले (सं) सम्यक् प्रकार से (अध्वरे) स्वार्थभावना शून्य श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान द्वारा (मर्तासः) जन्म-मरण के चक्र में अभी तक फंसे हुए कर्मयोगी मानव (त्वां देवं इन्धते) आपको जो दिव्य ज्योतिः के अतुलित भण्डार हैं, अपने अन्दर ढूंढ़ते हैं । आपकी दिव्य ज्योतिः को अपने अन्दर जगाते हैं ।

२७. त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीडते ।
गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ ३ । १० । २ ।

(अग्ने) हे श्रेष्ठ मार्ग का बोध कराने हारे प्रभो ! (त्वां) आपको (यज्ञेषु ऋत्विजं) जो स्वार्थ एवं हिंसा आदि दोषों से रहित दिव्यकर्म रूपी यज्ञों को सम्पन्न कराने हारे (होतारं) उनका सम्यक् बोध कराने हारे हैं तथा (ऋतस्य गोपा) ऋत ज्ञान के संरक्षण करने हारे तथा (दीदिहि) उसको विशेष रूप से चमत्कृत करने हारे हैं ऐसे आपका (स्वेदमे ईडते) हम अपने हृदय मन्दिरों में वन्दन करते हैं ।

२८. स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् ।
अञ्जानः सप्तहोतृभिर्हविष्मते ॥ ३ । १० । ४

(सः अग्निः) वह साधना द्वारा प्रबुद्ध होने वाली तथा अन्तरात्मा में सदा स्थित रहने वाली दिव्य अग्नि (अध्वराणाँ केतुः) स्वार्थ एवं हिंसा रहित दिव्य कर्मों की ध्वजा है अर्थात् उनका बोध कराने वाला ध्वज है । (देवेभिरागमत्) और साधक के हृदय में अपनी दिव्य विभूतियों के साथ प्रकट होने वाला है (हविष्मते) ब्रह्म पक्ष में प्रतिष्ठित मानव को (सप्तहोतृभिः) सात होता अर्थात् चक्षु, श्रोत्र, प्राण और वाक् द्वारा

(अञ्जानः) प्रकाशित करने वाला है अर्थात् इन ज्ञानेन्द्रियों को तेजोमय बनाने वाला है।

२९. अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज।
होता मन्द्रो विराजस्यति स्निधः ॥ ३। १०। ७

(अग्ने) हे दिव्य प्रकाश एवं ज्ञान के केन्द्र पावन प्रभो! (यजिष्ठः) आप परम पूज्य यजनीय हो। (अध्वरे) निस्स्वार्थ भावना से किये गये परोपकारादि कार्यों में (देवान्) दिव्य गुण सम्पन्न मानवों को (देवयते यज) अधिक् दीप्तिमान यजनीय बनाते हो। (होता) आप उनकी प्रार्थनाओं वा पुकारों को सुनने वाले हो। (मन्द्रः) उनको आन्तरिक हर्ष उल्लास व आनन्द प्रदान करने वाले हो (स्निध अति विराजसि) तथा विद्या आदि गुणों का नाश करने वाली वासनाओं को दूर भगाने वाले हो।

३०. स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम्।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥३। १०। ८

(पावक) हे पतित पावन प्रभो! (स नः दीदिहि) आप हमें अपने प्रकाश से युक्त करने वाले दिव्य (अस्मे) और हमें (द्युमद् सुवीर्यं दीदिहि) दिव्य कान्ति और बल से युक्त कराने हारे हो। आप तो (स्तोतृभ्यः) श्रद्धा भक्ति पूर्वक स्तवन करने वालों के (अन्तमः) अन्तरात्मा में सदा विराजमान रह कर (स्वस्तये भवा) सदा उनका कल्याण करने वाले हो।

३१. तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥३। १०। ९

परम पावन उपास्यदेव (तंत्वा) नानादिव्य गुण कर्म और शक्तियों से समन्वित आपका (विप्राः) मेधावी मानव (विपन्यवः) नाना प्रकार से आपका गुणानुवाद करने वाले (समिन्धते) आपकी दिव्य ज्योतिः का अपनी हृदय वेदी में उद्बोधन करते हैं। आप (हव्यवाहं) उनकी प्रार्थ-

नाओं को सुनने वाले (अमर्त्यं) जन्ममरण के चक्र से सदा दूर रहने वाले दिव्य आनन्द स्वरूप हो तथा (सहोवृधं) सहनशीलता के परम आगार हो।

३२. अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो
नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा
अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम्॥ ३। १७। ४

(जातवेदः) हे सकल संसार के जाननेहारे प्रभो! हम लोग (ईड्य) प्रशंसनीय व स्तुत्य (सुदीतिं) दिव्य प्रकाशमान (सुदृशं) महान् विश्व द्रष्टा (अग्निं) दिव्य ज्योतिर्मय (त्वा) आपको (नमस्यामः) श्रद्धायुक्त हो वन्दन करते हैं। (दिवाः) संसार के सर्व ज्ञानीजन (त्वां) आप (दूतं) दुष्ट दुर्गुण नाशक को (हव्यवाहं) हृदय की वेदी में समर्पित श्रद्धा की आहुति को ग्रहण करने वाले (अमृतस्य नाभिम्) दिव्य आनन्द के परम-धाम को महान् केन्द्र को, (अकृण्वन्) आत्म समर्पण करते हैं।

३३. अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः।
अर्थं ह्यस्य तरणि॥ ३। ११। ३।

(सः अग्निः) वह विश्व नियन्ता प्रकाश स्वरूप परमात्मदेव (पूर्व्यः) शाश्वत है, चिरन्तन है, सदा एकरस विद्यमान रहने वाला है। (यज्ञस्य केतुः) समस्त परोपकारादि दिव्य कर्मों की ध्वजा के समान है अथवा उनका प्रबोध कराने वाला है। जिस प्रकार ध्वजा किन्हीं पवित्र भावनाओं का प्रतीक होता है उस ही प्रकार वह परमात्मदेव समस्त दिव्य गुणों का प्रतीक है, (धिया चेतति) ध्यान योग द्वारा चिन्तन पथ में आने वाला है। (अस्य अर्थं हि) इस अग्निदेव की महती आकांक्षा ही (तरणि) संसार के मानवों को भवसिन्धु से पार उतारना है।

३४. अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव
स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनो विश्वमिन्ध
त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥ ३ । २० । ३

(जातवेदः देव अग्ने) हे सर्व दिव्य गुणों के केन्द्र (ज्योतिः) ज्योति स्वरूप प्रभो ! (तव अमृतस्य) सदा एकरस विद्यमान रहने वाले आपकी (नाम) निश्चय ही (भूरीणी स्वधावः) धारण शक्तियाँ असंख्य और महान् हैं । आप अपनी शक्तियों द्वारा सकल ब्रह्माण्ड के धारण व संचा-लन करने वाले हो । (पृष्टबन्धो) आप जीवों को कर्मबन्धन में बाँधकर रखने वाले हो । (मायिनां याश्चमाया) ज्ञानी जनों में जो कुछ भी ज्ञान की ज्योतियां वा दीप्तियाँ हैं (विश्वं) वह सब (पूर्वीः) शाश्वत हैं, सनातन व चिरन्तन हैं । (इत्त्वे संदधुः) और निश्चय आपमें निहित हैं अर्थात् आपके द्वारा ही विश्व में दिव्य ज्ञान की किरणें स्फुटित होती हैं ।

३५. अग्न इडा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः ।
जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥ ३ । २४ । २

(अग्ने) हे दिव्य प्रकाश के केन्द्र प्रभो ! (ईडासामध्यसे)अमृतवाणी से युक्त हमारे हृदय से प्रकट होने वाले स्तोत्रों द्वारा आप निश्चय अपना तैजस् रूप प्रकट करने वाले हो । (वीतिहोत्रो अमर्त्यः) जो मानव आत्म स्वरूपको जान जाता है और आन्तरिक प्रसन्नता के साथ आपका भजन करता है, आप निश्चय उसके हृदय मन्दिर में अपनी दिव्य ज्योतिः प्रकाशित करते हो । (नो अध्वरं सू जुषस्व) प्रभो ! हमारे पूर्ण अहिंसामय यज्ञीय जीवन को आप अपने दिव्य आनन्द से युक्त कर दो ।

३६. अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् ।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥ ३ । २४ । ५ ।

(अग्ने) परम पूज्य परमात्मदेव । (दाशुषे) दानशील तथा आत्म-समर्पण करने वाले जनों को (वीरवन्तं) श्रेष्ठ वीर्यवान सन्तान से तथा (परीणसं रयि दा) विपुल ऐश्वर्य से युक्त करने की कृपा करो और (नः) हमको (सूनुमतः) श्रेष्ठ सन्तान से (शिशीहि) युक्त कर दो ।

३७. ईडे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ।
श्रुष्टीवानं धितावानम् । ३ । २७ । २ ।

(अग्निं ईडे) मैं उपासक उस प्रकाश स्वरूप परमात्म देव का वन्दन करता हूं, (यज्ञस्य साधनं) जो मेरे सब यज्ञीय कर्मों का सिद्ध कराने वाला है, (विपश्चितं गिरा) जिसकी पवित्र वेदवाणी अत्यन्त दिव्य-ज्ञान से भरपूर है । (धितावानम्) जो सेवनीय उत्तम ज्ञान व पदार्थों को धारण कराने वाली है तथा (श्रुष्टीवानं) हमारे जीवन के उद्देश्य को सफल बनाने वाली है ।

३८. अग्ने कदा न आनुषग् भुवद् देवस्य चेतनम् ।
अधा हित्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विश्वीड्यम् ॥
४ । ७ । २ ।

(अग्ने) हे वन्दनीय ज्योतिः स्वरूप प्रभो ! (कदा) इस जीवन में कब वह समय आवेगा जब (मर्तासः) आवागमन के चक्कर में फंसे हुए प्राणी (ते देवस्य) तुझ दिव्य गुण सम्पन्न दिव्य गुणों के परमागार देवाधिदेव की (चेतन) दिव्य चेतना को (आनुषक्) अनुकूलता को (भुवत्) प्राप्त करेंगे । (अधा हि त्वा) और कब तुझे (विश्वीड्यम्) जो विश्ववन्द्य है, (जगृभ्रिरे) अपने मन मन्दिर में धारण करेंगे ।

३९. दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहमर्त्यम् ।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ ४ । ८ । १

(वः) ऐ संसार के मानवो ! तुम (विश्ववेदसं) उस सकल विश्व के जाननेहारे सर्वज्ञ प्रभु का (अमर्त्यं) जो आवागमन के चक्र से सदा ऊपर रहने वाला है (दूतं) और हमारे अन्दर दिव्य प्रेरणाओं का देने वाला है तथा (हव्यवाहं) श्रद्धा से युक्त निष्काम भावनाओं से हृदय से निकलने वाली हमारी प्रार्थनाओं को सुनने वाला है और जो (यजिष्ठं) परमपूजनीय एवं एकमात्र वन्दनीय है (गिराऋञ्जसे) पवित्र वैदिक स्तोत्रों से उसका अर्चन करो ।

४०. अग्ने मृड महां असि य ईमा देवयुं जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ ४ । ९ । १

(अग्ने) हे दिव्य तेज के निधान परमात्मन् ! (महाँ असि) आप महान् हो आपकी महिमा अपरंपार है । (यः) जो आप (ईं) अपने इस (देवयुंजनं) दिव्य गुणों के धारण करने वाले जन को (आमृड) भली भान्ति समृद्धिशाली बनाते हो । (बर्हि आसदं इयेथ) और उसके हृदय की पवित्र वेदी में आकर विराजमान होते हो ।

४१. अस्माकं जोष्यमध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः ।
अस्माकं श्रृणुधी हवम् ॥ ४ । ९ । ७

(अंगिरः) हे दिव्य ज्ञान से सदा देदीप्यमान अग्नि देव ! (अस्माकं) हम अपने उपासकों के (अध्वरं यज्ञं) हिंसा शून्य परोपकारादि दिव्य कर्मों को (जोषि) स्वीकार करो, उनको मान्यता प्रदान करो (अस्माकं अस्माकं) और हम उपासकों की निश्चय ही आपके भक्तों की (हवं) पुकार को (श्रृणुधी) सुनो ! बस यही हमारी आग्रह पूर्वक अ॰ विनती है ।

४२. परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ४ । १५ । ३

(अग्निः) जीवन शक्ति का परम दातार परमेश्वर (कविः) हमारे मन के सब संकल्प विकल्पों को जानने वाला है (वाज पतिः) हमारे शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक बलों की रक्षा करने वाला है (हव्यानि) वह हमारे श्रद्धा समन्वित आत्म समर्पण को (परि अक्रमीत्) निश्चय ही सर्वात्मना स्वीकार करने वाला है (दाशुषे) वह दानशीलों को परोपकार यज्ञ में सर्वस्व समर्पण करने वालों को (रत्नानि) नाना प्रकार के दिव्य रत्न अर्थात् आध्यात्मिक तेज आदि को (दधत्) धारण कराने वाला है ।

४३. त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्त्तास ईडते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं सहव्या वक्ष्यानुषक् ॥५।६।१।

(अग्ने) हे दिव्य प्रकाश के परम पुञ्ज प्रभो ! (हविष्मन्तः मर्तासः) आवागमन के चक्र में फंसे हुये मानव अपनी श्रद्धा की पवित्र अञ्जली लिये (त्वाँ देवं) आप दिव्य शक्तियों और बलों के भण्डार की (ईडत) वन्दना करते हैं (त्वा) और आपको (जातवेदसं मन्ये) उत्पद्यमान सरल विश्व का और मानव मात्र के हृदयों का भेद जानने वाला मानते हैं (सः) सो आप (हव्या) हमारे श्रद्धा सुमनों को (आनुषक् वक्षि) निश्चय ही सदा अंगीकार करने वाले हो ।

४४: अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्त बर्हिषः ।
संयज्ञासश्चरन्ति यं संवाजासः श्रवस्यवः ॥
५ । ६ । २

(यं) जिस परमात्म देव को (यज्ञासः संचरान्ति) यज्ञीय जीवन यापन करने वाले सदा सम्यक् प्रकार से अर्चन करते हैं (वाजासः

जिस भी प्राप्ति का अहर्निश प्रयत्न करते हैं वह (अग्निः) दिव्य बल विक्रम तेज का निधान प्रभु (वृक्त बर्हिषः) प्रगतिशील प्रजाजनों को (दास्वतः) दानशीलता यज्ञ, तप संयम से जीवन यापन करने वाले (क्षयस्यवः) प्रजाओं को (होता) सदा अपनी दिव्य सम्पदाओं का दान करता है।

४५. त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ।
५ । १० । ३

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप प्रभो ! (त्वं) आप (नः एषां) हमारे इन जनों के (गयं पुष्टिं च) मानसिक एवं शारीरिक बलों का (वर्धय) संवर्धन करो (ये सूरयो नरो) जो ज्ञान से युक्त होकर प्रगतिशील जीवन यापन करते हैं (मघानि प्र आनशुः) और जो नाना प्रकार की सम्पदाओं का राष्ट्र व जनता के हित सम्पादन करते हैं और (स्तोमेभिः) जो दिव्य भक्ति भाव समन्वित स्तोत्रों से आपका सदा वन्दन करते हैं उनको मानसिक एवं आत्मिक बलों से युक्त करो।

४६. अर्चन्तस्त्वा हवामहे अर्चन्तः समिधीमहि ।
अग्ने अर्चन्त ऊतये ।। ५ । १३ । १

(अग्ने) हे दिव्य प्रकाश के परमनिधान स्वामिन् । (त्वा ऊतये) आत्मोत्थान की पुनीत भावना से आपका हम (अर्चन्तः) अर्चन करते हैं (अर्चन्तः त्वा हवामहे) और अर्चन करते हुए अपने मन मन्दिर में आपका आवाहन करते हैं और (अर्चन्तः समिधीमहि) अर्चन करते-करते भाव विभोर होकर आप में ध्यानावस्थित होने की कामना करते हैं।

४७. अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः ।
देवस्य द्रविणस्यवः ।। ५ । १३ । २

(दिविस्पृशः द्रविणस्यवः) आध्यात्मिक विश्व में ऊँचा उठने वाले तथा दिव्य ऐश्वर्य की कामना करने वाले हम उपासक (अग्नेः देवस्य) उस दिव्य आध्यात्मिकता के केन्द्र परमात्म देव के (अद्य) शीघ्र ही (सिध्रं स्तोमं) सिद्धि देने वाले अर्थात् तुरन्त आत्मिक शान्ति प्रदान करने वाले पावन स्तोत्र का (मनामहे) अपने अन्दर गान करते हैं ।

४८. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
त्वया यज्ञं वितन्वते ।। ५ । १३। ४

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप प्रभो (त्वं) आप (सप्रथा असि) विभु हैं प्रकृति के कण-कण में और जीव-जीव में रमण करने वाले हैं (जुष्टोसि) प्रत्येक जीवात्मा के साथ सदा धूप छाँह की भान्ति सटे हुए हैं और जीव के चिरन्तन सखा हैं । (होता असि) दिव्य ज्ञान और शक्ति के दातार हैं (वरेण्योऽसि) श्रेष्ठतम एक मात्र वरण करने योग्य हैं (त्वया) आप अहेतुक दयासिन्धु की कृपा से (यज्ञं वितन्वते) दिव्य गुणों और कर्मों का विश्व मानव में विस्तार होता है ।

४९. अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्रनो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ।
५ । १० । १

(अध्रिगो अग्ने) महान् बल पराक्रम युक्त ज्ञान स्वरूप प्रभो ! (अस्मभ्यं) हम अपने उपासकों को (ओजिष्ठं द्युम्नं आभर) उत्तम पराक्रम युक्त दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ (परीणसाराया) महती दिव्य विभूति के साथ-साथ (नः वाजाय) हमारे लिये बल और ज्ञान की वृद्धि के उचित (पन्थाम्) श्रेयः मार्ग को (प्ररत्सि) सम्यक् प्रकार से उन्मुक्त करो ।

५०. अग्निर्जुषत नो गिरोहोता यो मानुषेष्वा ।
स यक्षद् दैव्यं जनम् ।। ५ । १३ । ३

(यः अग्निः) जो दिव्य प्रकाश स्वरूप परमात्मा (नो गिरः) हमारे भक्ति भाव युक्त स्तोत्रों को (आजुंषत) अवश्य ही भली भान्ति श्रवण करता है (मानुषेषु) मननशील अपने उपासकों पर (होता) दिव्य ज्ञान वा ऐश्वर्य की वर्षा करता है (सः) ऐसा वह परमात्म देव (दैव्यं जनं) दिव्य गुण सम्पन्न मानवों का (यक्षत्) निश्चय मान करता है अर्थात् उनको दिव्य ऐश्वर्य सुख और समृद्धि से युक्त करता है ।

५१. त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ।। ५ । १३ । ५

(अग्ने) हे दिव्य प्रकाश के केन्द्र प्रभो ! (त्वं) आप (वाजसातमं) दिव्य ऐश्वर्यों और वज्रों के दातार हों (सुष्टुतं) आपही सम्यक् प्रकार से एकमात्र स्तुति किये जाने योग्य हो (विप्राः) ज्ञान यज्ञ का विस्तार करने वाले धीर पुरुष (त्वांवर्धन्ति) अपने मन मन्दिर में आपकी ज्योतिः जगाते हैं (सः) ऐसे आप (नः) हमको (सुवीर्यं) दिव्य तेज से (रास्व) युक्त कर दो ।

५२. अग्ने नेमिररां इव देवांस्त्वं परिभूरसि ।
आ राधश्चित्रमृञ्जसे ।। ५ । १३ । ६

(अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप परमात्मन् ! (नेमिः अरां इव) अरों से संयुक्त रथ चक्र की नाभि के समान (त्वं) आप (देवान परिभूरसि) सब चेतना और ज्ञान युक्त जीवों पर शासन करने वाले हो (चित्रराधः) तथा उनको नाना प्रकार की विभूतियों से (आमृञ्ज से) सम्यक् प्रकार से युक्त करने वाले हो ।

५३. तमध्वरेष्वीडते देवं मर्त्ता अमर्त्यम् ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥ ५ । १४ । २

(अध्वरेषु) अहिंसामय परोपकरादि दिव्य कर्मों के अनुष्ठान में (तं अमर्त्यं देवं) उसी अविनाशी नसनाड़ी बन्धन से रहित दिव्यदेव का (यर्त्ता:) आवागमन के चक्र में फंसे हुए मानव (ईऽते) आत्म कल्याण के निमित्त वन्दन करते हैं (मानुषे जने) मननशील मानवों के मध्य जो (यजिष्ठं) एकमात्र वन्दनीय और उपासनीय है ।

५४. अग्निमीडेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत ।
वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५ । १४ । ४.

(ईडेन्यं) वन्दनीय (घतपृष्ठं) अन्तर्हित आध्यात्मिक-शान्ति की दिव्य वारिधारा का (कवि अग्निं) क्रान्तदर्शी दिव्य आध्यात्मिक ज्योतिः का (सपर्यति) हे ज्ञानी मानव तू वन्दन कर और यह दृढ़ धारणा बना कि वह निश्चय ही (हवं शृणवत्) अन्तस्तल से निकली पुकार को सुनने वाला हैं और(मे वेतु,) मुझे प्राप्त होने वाला अर्थात् मुझे अपना दिव्य दर्शन देने वाला है ।

५५. चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥
५ । २२ । ३

हे पावन प्रभो ! (वरेण्यस्य) वरुण कहने योग्य सर्वश्रेष्ठ (अवसः) सर्व रक्षक (ते) आपकी शरण में (इयानामः) आते हुए (मर्तासः) मरण-धर्मा मानव (ऊतये) आत्मोद्धार की कामना से (चिकित्वन् मनसं) पूर्ण विज्ञान और मननशक्ति युक्त (त्वां देवं) दिव्य गुण निधान आपको (अमन्महि) श्रद्धापूर्वक ध्याते हैं ।

५६. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राताशिवो भवा वरूथ्यः ॥ ५ । २४ । १.

(अग्ने) हे परम पावन ज्योति स्वरूप प्रभो ! (त्वं नो अन्तमः) आप हमारे निकटतम वासी चिरन्तन सखा हो और हमारी अन्तिम गति आप ही हो (उतात्रता) और आप ही जीवन के भीषण संग्रामों में हमारी रक्षा करने वाले हो (वरुथ्यः) आप तो दिव्य बल व तेज के निधान हो (शिवो भव) हमारा कल्याण करो हमारे लिये नितान्त कल्याणकारी होवो ।

५७. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ ५ । २४ । २

हे प्रभो ! आप (वसुः) सदा हमारे मन मन्दिर में वास करने वाले हो (अग्निः) हमारे मार्ग दर्शक हो (वसुश्रव) परमऐश्वर्यशाली अथवा सब की सुनने वाले हो (अच्छा) सम्यक् प्रकार से (नक्षि) हमारे आत्मा से प्रकाशित हो तथा (द्युमत्तमं रयिं दाः) द्युतिमान दिव्य ऐश्वर्य के आप तो दातार हो ।

५८. स नो बोधि श्रुधि हवमुरुष्याणो अघायतः समस्मात् ॥ ५ । २४ । ३

हे जीवन शक्ति के दातार प्रभो ! आप (नः बोधिः) हमारे आत्मा को प्रबुद्ध करो (नः हवं) हमारी विनती को (श्रुधि) सुनने की कृपा करो (समस्मात् अघायतः) पतन के गर्त में ढकेलने वाली सकल पाप वासनाओं से (उरूष्य) हमें बचाओ हमारा त्राण करो ।

५९. तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे
सखिभ्यः ।। ५ । २४ । ४

(शोचिष्ठ) हे पवित्रता के परम आगार (दीदिवः) सत्यज्ञान के प्रकाशक प्रभो (सखिभ्यः) समान ख्याति वाले अर्थात् गुण कर्मों में एक सीमा तक समता रखने वाले अपने मित्र-जनों के निमित्त (सुम्नाय) सुख सौभाग्य की प्राप्ति के लिये (नूनं) निश्चय करके ही (तं त्वा) ऐसे आपकी (ईमहे) हम कामना करते हैं ।

६०. स नो धीतो वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ।।
५ । २५ । ३ ।

(अग्ने) हे परम पावन प्रभो ! (सः) आरा (नः) हम अपने उपासकों को (वरिष्ठया धीती) सर्वोत्तम धारण शक्ति तथा (श्रेष्ठया सुमत्या) श्रेष्ठ सुमति से और (सुवृक्तिभिः) पाप वासनाओं का दमन करने वाली शक्तियों से युक्त करो तथा (वरेण्य) हे वरण करने के योग्य सर्वश्रेष्ठ स्वामिन ! (नः रायः दिदीहि) हमें दिव्य सुख सम्पदा से युक्त कर दो ।

६१. अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्त्यावेविशन् ।।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ।।
५ । २५ ।४

(अग्नि) वह गति ज्ञान का केन्द्र परमात्मा (मर्तेषु आविशन्) मरण-धर्मा अर्थात् आवागमन के चक्र में फंसे हुए सकल मानवों में रमण करने वाला है तथा उनको त्रिविध शारीरिक मानसिक व आत्मिक बलों के देने वाला है (देवेषु राजति) और ध्यान योगी ज्ञानी जनों में अपना दिव्य प्रकाश प्रकट करने वाला है (अग्नि) ऐसा वह सबका नियन्तनिता अग्निदेव (नः हव्यवाहनः) हमारी प्रार्थनाओं को तथा कर्म क्षेत्र में निष्काम भाव से समर्पण पूर्वक दी हुई हमारी आहुतियों को स्वीकार करने वाला है ।

(अग्निं) ऐसे उस दिव्य देव की (धीभिः) मेघा बुद्धियों द्वारा (सपर्यंत) हम उपासना करते हैं।

६२. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।

अग्ने बृहन्तमध्वरे ।। ५ । २६ । ३

(कवे अग्ने) हे महान क्रान्तदर्शी ज्योतिः स्वरूप प्रभो। आप (वीति-होत्रं) अपनी दिव्य ज्योतिः तथा रक्षा का सदा दान करने वाले हो (द्युमन्तं) सदा अपने दिव्य तेज से विश्व में प्रकाशित होने वाले हो (बृहन्तं) सब से श्रेष्ठ और सब से महान हो (त्वा) ऐसे आपका (अध्वरे) हिंसादि दुर्गुणों से रहित परोपकारादि यज्ञीय कर्मों में (समिधीमहि) सम्यक् प्रकार से हम ध्यान करते हैं।

६३. अग्ने विश्वेभिरागहि देवेभिर्हव्य दातये ।

होतारं त्वा वृणीमहे ।। ५ । २६ । ४ ।

(अग्ने) हे जगन्नियन्ता नाथ (हव्य दातये) अपनी आयु प्राण, मन, चक्षु श्रोत्रादि सब कुछ यज्ञ से समर्पित करने वाले अर्थात् परोपकार कर्मों में अपना तन मन धन सर्वस्व होम करने वाले मानव को (विश्वेभिः-देवेभिः) समस्त दैवी गुणों और सम्पदा से (आगहि) युक्त करो तथा प्राप्त होवो (त्वा) आप (होतारं) सृष्टि सञ्चालक रूपी महान याज्ञिक को (वृणीमहे) हम अपनी अन्तरात्मा में आपका वरण करते हैं।

६४. समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।

वृषभो द्युमनवां असि समध्वरेष्विध्यसे ।।

५ । २८ । ४.

(अग्ने) हे दिव्य ज्ञान व ज्योतिः के प्रदाता प्रभो! (वृषभो असि) आप अत्यन्त बल और पराक्रम युक्त हो (द्युम्नवां असि) दिव्यदीप्ति और तेज से युक्त हो (अध्वरेषु) स्वार्थ भावना शून्य

परोपकारादि कर्मों के अनुष्ठान में (सं इध्यसे) कर्म योगी जनों के हृदयों में आप प्रकट होने वाले हो (समिद्धस्य) अपने दिव्य तेज से (प्रमहसः) महती दिव्यद्युति से चमकनेवाली (तव श्रयं) तेरी दिव्य ज्योतिः की आभा को (वन्दे) मैं वन्दन करता हूँ।

६५. अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः।
अग्निं होतारमीडते यज्ञेषु मनुषो विशः॥
६। १४। २

(अग्निः इत्‌हि) निश्चय ज्ञान दाता प्रकाश स्वरूप परमात्मा ही (प्रचेता) हमारे अन्दर सदा विद्यमान रहकर सदा शुभ कर्मों के करने की तथा अशुभ कर्मों से दूर रहने की हमें प्रेरणा देने वाला है (अग्निः) निश्चय वह गति का केन्द्र परमात्मदेव (वेधस्तमः ऋषिः) ज्ञान का प्रकाशक परम ऋषि है। अतः (यज्ञेषु) सर्व कर्मों में (मनुषो विशः) मनन शील प्रजा (होतारं) उस वारंवार प्रेरणा देने वाले (अग्निं) परमात्म देव का (ईडते) वन्दन करती हैं।

६६. समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं
पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्॥ विप्रं होतारं
पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम्॥
६। १५। ७.

(शुचिं) अत्यन्त शुद्ध पवित्र (पावकं) तथा दूसरे की जो उससे सम्बन्ध रखते हैं, उनको पवित्र करने वाले (ध्रुवं) सदा निश्चल व्यापक (समिद्धं) अपने दिव्य तेज से सदा देदीप्यमान (अग्निं) परम पावन ज्योतिः स्वरूप परमत्मादेव का (पुरो अध्वरे) जो तप त्याग मय श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान में सदा नेतृत्व करने वाला है (समिधा गिरा) अपनी पवित्रवाणी के द्वारा (गृणे) उस दिव्य देव का हम स्तवन करते हैं जो (विप्रं) ज्ञान का दाता (होतारं) हमारी स्वार्थ भावना शून्य पुकारों का

सुनने वाला (अद्रहं) पक्षपात रहित (पुरूवारं) सदा बुराइयों से हमें बचाने वाला हैं (कवि) जो हमारे हृदय के संकल्प विकल्पों को जानने वाला है (जातवेदसम्) सकल ब्रह्माण्ड की सुध लेने वाला है (सुम्नैरीमहे) ऐसे उस प्राणप्रिय प्रभु का हम पवित्र मन होकर वन्दन करते हैं।

६७. अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नुष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥६। १४ । १.

(अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप प्रभो । (यः दुवो मर्त्यः) जो प्रयत्नशील मानव (धीतिभिः धियं जुजोष) आपकी दिव्य ज्योतिः के साथ अपनी बुद्धियों को संयुक्त करता है (सः नु) वह निश्चय ही (पूर्व्यः) अपने पूर्वज श्रेष्ठ ज्ञानी जनों के ज्ञान से सुभूषित होकर (प्रभसन्) विशेष रूप से चमत्कृत होता और उस दिव्य ज्ञान की दूसरों पर वर्षा करता और (अवसे) अपने जीवन की रक्षा के लिये अपने कल्याण के लिये (इषं वुरीत) जीवन यापन की उत्तम धनादि वस्तुओं से सम्पन्न होता है।

६८. अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वावेद जनिमा जातवेदाः । देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्रयजतामृतावा ॥ ६ । १५ । १३

(अग्निः) दिव्य प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (होता) औधड़ दानी है उस का दान क्षेत्र सदा खुला रहता है (जनिमा) संसार को उत्पन्न करने वाला राजा विश्व को प्रकाशित करने वाला तथा उस पर शासन करने वाला है (विश्वावेदः)और सकल विश्व का ज्ञाता है (सः गृहपतिः) वह हमारी इस कुटिया का स्वामी है हमारी इस अष्टचक्रा नवद्वारा शरीररूपी पुरी का निर्माता है अर्थात् गृह कारक व रक्षक है (जातवेदः) उसके प्रकाश से यह सारा संसार प्रकाशमान है (यः) जो (मर्त्यानां) आवागमन के चक्र में फंसे मानवों का (उत) तथा (देवानां) विद्वान

योगी जनों का सिद्ध पुरुषों का (यजिष्ठः) पूज्यतम है तथा (सः) वह (यजतां) यजन करने वाले परोपकारादि पुण्यकर्मों का अनुष्ठान करने वाले जनों का (ऋतावा) सत्यज्ञान से परिपूरित अग्रणी अर्थात् नेता है नियन्ता है।

६६. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने ।। ६ । १६ । १।

(अग्ने) हे दिव्य प्रकाश के भण्डार प्रभो। (त्वं यज्ञानं होता) आप समस्त दिव्य कर्मों का हमें बोध कराने वाले हो (विश्वेपां हितः) और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में निज सत्ता से सदा विद्यमान हो अथवा प्राणीमात्र के हितू हो (मानुषे जने) अपनी विवेक शील मनस्वी प्रजा में (देवेभिः) अपने दिव्य गुणों से प्रकाशित होवो।

७०. अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ।। ६ । १६ । १०.

(अग्न आयाहि) हे ज्ञानस्वरूप स्वामिन आओ और अपने इस भक्त उपासक के मन मन्दिर में प्रकाशित होवो (वीतये) मुझे दिव्य सुख प्रदान करो और मेरे इस जीवन को प्रगतिशील बनाओ (सत्सि बर्हिषि) अपनी इस जीवन यज्ञ की वेदी में (नि होता हव्य) जो कुछ श्रद्धा से युक्त होकर मैं हव्य की भेंट चढ़ाता हूँ (गृणानः) उसको स्वीकार करते हुए (दातये) अपनी कृपा द्वारा दिव्य जीवन मुझे प्रदान करो।

७१. अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम्।
येना वसून्याभृता तृढ्हा रक्षांसि वाजिना ।।
६ । १६ । ४८.

(देवासः) दिव्य गुण युक्त संसार के श्रेष्ठ मानव (वृत्रहन्तमं) काम क्रोध, लोभ, मोहादि असुरों का विशेषरूप से संहार करने वाले (अग्रियं)

सदा दिव्य कर्त्तव्य पथ का बोध कराने वाले (अग्निं) ज्योतिः स्वरूप परमात्मदेव का (ईन्धते) अपने अन्दर आराधन करते हैं। आध्यात्मिक अग्नि को प्रज्वलित करते हैं (येन वाजिना) परमात्मदेव की जिस महती शक्ति द्वारा (वसूनि आम्रताः) असंख्य प्रकार के वैभव विश्व में विद्यमान हैं। (रक्षांसि तृड्हा) तथा वह परमात्मा सब प्रकार के हमारे दुर्गुणों का हमारी दुष्ट वृत्तियों का नाश करने वाला है।

७२. अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्या ग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताऽथा देवा दधिरे हव्यवाहम्॥ ७।११।४

(बृहतः अध्वरस्य) महान् हिंसा रहित दिव्य कर्मों की (अग्निः ईशे) प्रेरणा का स्रोत परमात्मदेव ही है (विश्वस्य कृतस्य हविषः) परोपकार यज्ञ में प्राणी कल्याण सम्बन्धी पुण्य कार्य में दी गई सरल दिव्य आहुतियों का बोध कराने वाला भी परमात्मा ही है (वसव) आत्मस्थ ज्ञानी जन (अस्य क्रतुं) इस दिव्यदेव के ज्ञान का (जुषन्तां) सम्यक् प्रकार से सेवन करें (अथ) निश्चय ही (देवाः) ज्ञानी मानव (हव्यवाहं) इसके दिव्य ज्ञान को (दधिरे) अपने अन्दर धारण करते हैं।

७३. त्वमग्ने वीरवद् यशो देवश्च सविता भगः।
दितिश्च दाति वार्यम्॥ ७।१५।१२.

(अग्ने) हे दिव्य प्रकाश स्वरूप परमात्मन ! (देवः सविताय) आप दिव्य गुणों के आगार तथा उनके प्रकाशक हो (भगः) परमैश्वर्यवान् हो (वीरवद) अतुलित बलों के भण्डार एवं (यशः) महा महिमावान् हो (दितिश्च) दुःख दारिद्रय विनाशक हो (दाति वार्यम्) और श्रेष्ठ जीवन धन के दातार हो।

७४, अग्ने रक्षाणो अंहसः प्रतिष्म देव रीषतः ।
तपिष्ठैरजरो दह ॥ ७ । १५ । १३ ।

(अग्ने) शुभमार्ग दर्शक प्रियतम प्रभो ! (नः) हम अपने उपासकों को (अंहसः) पाप कर्मों से (रक्षा) बचाओ (देव) हे दिव्य गुणों के भण्डार प्रभो (रीषतः) पाप वृत्तियों वासनाओं को, आप जो (अजरः) सदा शक्ति सम्पन्न रहते हो (तपिष्ठैः) अपनी तपन शील शक्तियों द्वारा (प्रतिदह्स्म) सदा भस्म करने वाले हो ।

७५. अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा ।
ते भानुर्भिवि तस्थिरे ॥ ८ । ७ । ३६ ।

(अग्निः) जिस प्रकार यह महान् भौतिक तत्व अग्नि (पूर्व्यः हिजानि) पूर्व से ही विद्यमान रहता और (ते अर्चिपा) परमात्मा के दिव्य तेज से (सूरः न छन्दः) सूर्य के समान दीप्ति युक्त मनोहर होता है और (ते भानुभि) उसकी ज्योतिः तेज के द्वारा (वितस्थिरे) विशेष रूप से विश्व में विद्यमान रहता है । उसी प्रकार परम पवित्र विश्व व्यापक महान् आध्यात्मिक अग्नि परमात्मा अपने स्वाभाविकी ज्ञान, वल व क्रियाओं के द्वारा विश्व में व्याप्त होकर ज्ञानी जनों के हृदय में विशेष रूप से प्रकाशित होता है ।

७६. अग्निं व पूर्व्यं गिरा देवमीडे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरू प्रियंमित्रं न क्षेत्र साधसम् ॥
८ । ३१ । १४.

(वसूना देवं) सब आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक विभूतियों के प्रकाशक (पूर्वं अग्नि) सनातन ज्योतिः स्वरूप प्रभु का (गिरा) पावनी वेदवाणी द्वारा (वः ईडे) तुम्हारे लिये परवान करता हूँ (पुरू प्रियं) तुम उस प्राण नाथ प्यारे प्रभु का (क्षेत्र साधसम्) मानव हृदय की यज्ञवेदी

को पवित्र करने वाले प्रभु का (मित्रं न) जो हम सबका मित्र समान है (सपर्यन्त) सब मिलकर अर्चन और वन्दन करो ।

७७. अग्निमस्तोष्यृग्मियमग्निमीडा यजध्यै ।
अग्निर्देवां अनक्तु न उभे
हि विदथे कविरन्तश्चरति दूत्यं नभन्तामन्यके
समे ।। ८ । ३९ । १

(ऋग्मियं) स्तुति योग्य (अग्निं) परम पावन प्रभु का (इडा) पावन भक्ति स्तोत्रों द्वारा (अस्तोषि) मैं स्तवन करता हूँ । (अग्निं) उस प्रकाश स्वरूप जीवनाधार परमात्मदेव का ही में (ईडा यजध्यै) पवित्र वेद वाणी द्वारा यजन करता हूँ । (उभे विदथे) दोनों प्रकार के आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन संग्रामों में (अग्नि:) परम पावन ज्योतिस्वरूप परमात्मदेव (कवि:) जो क्रान्तदर्शी है हमारे हृदयों के सब संकल्प विकल्पों को जानने हारा है (न: देवानां अनक्तु) वह हमारी सब आन्तरिक शक्तियों को प्रकट करें । (अन्तश्चरति) वह अग्निदेव हमारे अन्दर रमण करने वाले हैं उनकी कृपा से (दूत्यं) हमारी सब दुष्ट भावनाएँ व दुर्गुण (नभन्तां) नाश को प्राप्त होवें (अन्यके समे) हमारे अन्दर घर किये हुई सब पाप वासनाएँ विनष्ट हो जावें ।

७८. प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।
प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ।। ८। २३। २२

(अग्निं) दिव्य ज्योतियों के भण्डार प्राणनाथ प्रभु को जो (जातवेदसं) जो सब के हृदयों के संकल्प विकल्पों के जानने वाला है (प्रथमं) सब के अन्दर रमण करने वाला शाश्वत महान चेतन तत्व है (यज्ञेषु पूर्व्यं) हिंसादि देह रहित दिव्य कर्मों के अनुष्ठान में सब से महान है (हविष्मती स्तुक्) ज्ञान तथा भक्ति से युक्त बुद्धि द्वारा (नमसा प्रतिएति) तथा श्रद्धा पूर्वक वन्दना द्वारा प्रकट होने वाला है ।

७९. आभिर्विधेमाग्नये ज्यैंष्ठाभिर्व्यश्ववत् ।
मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥८। २३। २३

(शुक्रशोचिषे) अपने दिव्य आध्यात्मिक तेज से सदा देदीप्यमान (अग्नये) प्रकाशस्वरूप परमात्मदेव के लिये (व्यश्ववत्) विशेष रूप से (मंयतेन्द्रिय) व ज्ञानवान होकर (अभिः) इन (ज्येष्ठाभिः) सब से बड़ी (संहिष्ठाभिः) और सब से श्रेष्ठ (मतिभिः) बुद्धियों द्वारा (विधेम) उस जीवनाधार प्रभु की हम भक्ति करें ।

८०. अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः ।
अद्म सद्याय हिन्विरे ॥ ८ । ४३ । १९.

(अग्निं) उस विश्व नियन्ता परमत्मदेव की (अद्मसद्याय) इस हृदय मन्दिर की यज्ञवेदी में व्याप्ति के निमित्त (धीभिः) ध्यान योग के द्वारा (विपश्चितः) ज्ञानी जन (मेधिरासः) जो मेधा बुद्धि के धनी और (मनीषिणः) विशेष मननशील हैं (हिन्विरे) श्रद्धा युक्त हो स्तवन करते हैं ।

८१. अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत ।
इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ ८ । ४३ । १६.

(अग्ने) हे दिव्य तेज क परम निधान प्रभो ! आप (भ्रातः) हमारे बन्धु हो (सहस्कृत) अपनी शक्तिरूपी सामर्थ्य में हमें धारण करने वाले हो (रोहित् अश्व) अपने दिव्य तेज द्वारा सूर्यादि लोकों को धारण करने वाले हो (शुचिव्रत) आपके व्रत अर्थात् नियम अत्यन्त पवित्र और श्रेष्ठ हैं (मे) कृपया मेरी (इमं) इस (स्तोमं) विनती को (जुषस्व) सुनो ।

८२. विप्रं होतारम द्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् ।
यज्ञानां केतुमीमहे ॥ ८ । ४४ । १०

(विप्रं) ज्ञान का विस्तार करने वाले (होतारं) तपत्यागमय जीवन व्यतीत करने वाले (अद्रुहं) द्रोहरहित द्वेष भावना से शून्य अहिंसा

व्रतपरायण (धूमकेतुं) अज्ञान मोहादि के नाश करने वाले अथवा अज्ञानान्धकार में फंसी प्रजा को मार्ग प्रदर्शन कराने हारे (विभावसुं) तप और ज्ञान की विशेष आभा से युक्त (यज्ञानां केतुं) परोपकारादि दिव्य कर्मों के करने में अग्रणी जनों की (इमहे) हम आकांक्षा करते हैं अर्थात् उपयुक्त प्रकार के श्रेष्ठ मानवों की सदा कामना करते हैं।

८३. अग्ने निपाहि नस्त्वं प्रतिष्म देव रीषतः।
भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥ ८ । ४४ । ११

(अग्ने देव) हे शुचिता के आगार प्रकाशस्वरूप प्रभो। (त्वं) आप (नः) हम अपने आज्ञानुवर्तियों की (रीषतः) हिंसक प्राणियों से (निपहि) विशेष रूप से निरन्तर पालन करते हो (सहस्कृत) हे शक्ति के सहनशीलता के अद्वितीय भण्डार प्रभो (द्वेष) जो हमसे अकारण द्वेष करते हैं (भिन्धि) उनके वल की हानि करो।

८४. त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ । ४४ । १९.

(अग्ने) हे दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश के पुञ्ज परमात्मन्! (मनीषिणः) मननशील मानव (चित्तिभिः) ध्यान योग की साधना द्वारा (त्वां त्वां) निश्चय आपको और केवल एकमात्र आपको (हिन्वन्ति) प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं (नः गिरः) हमारी वाणियाँ स्तुतियां प्रार्थनाएं (त्वां) आपके यश और आपकी महिमा का ही (वर्धन्तु) सदा संवर्धन करने वाले हों।

८५. अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः।
शुची रोचत आहुतः ॥ ८ । ४४ । २१.

(अग्निः) विश्व प्रकाशक ज्योतिः स्वरूप परमात्मा (शुचिव्रततमः) पवित्रतम व्रतों का पावन केन्द्र है। संसार में श्रेष्ठतम व्रतों दिव्य कर्मों

का प्रकाश उस ही की दशा से होता है (शुचिविप्रः) वह आदि ज्ञान दाता है और पवित्रता का केन्द्र है (शुचिः कविः) अत्यन्त पवित्र क्रान्त-दर्शी और सनातन काव्य वेद का प्रकाशक है (आहुतः) जब भक्तिभाव से युक्त मानव उसका अपने मन मन्दिर में आवाहन करता है तो वह (शुची रोचते) अपने पवित्रता कारक महान् भर्ग के साथ प्रकट होता है।

८६. यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ ८ । ४४ । २३.

(अग्नेः) हे ज्योतिः स्वरूप प्रभो (यद् अहं त्वं स्याम्) यदि मैं तू हो जाऊं अर्थात् यदि मैं अपने अस्तित्व को तेरे में सर्वथा समर्पित कर तन्मय हो जाऊं (त्वं वा घा अहं स्या) अथवा तू मैं हो जाय अर्थात् तू अपनी दिव्य ज्योतिः की छटा में मेरे अपनेमय को विस्मृत करादे तब ही (ते आशिषः) तेरी महती दिव्य आकांक्षाएँ (इह) इस मेरे जीवन में (सत्याः स्युः) सत्य सिद्ध हो पावेंगी अर्थात् मैं आपकी दिव्य आकांक्षाओं वा आज्ञाओं का अपने को वाहन बना पाऊंगा।

८७. युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम्
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ ८ । ४४ । २६.

(मन्मभिः) मैं दिव्य भक्ति स्तोत्रों द्वारा (युवानं) सृष्टि का सृजन और संहार करने हारे गति के केन्द्र तथा दुष्ट दुर्गुण नाशक परमात्म देव की (विश्पतिं) जगत् के स्वामी की (कविं) क्रान्तदर्शी सब के हृदयों के भावों को जानने वाले परमात्मदेव की (विश्वादं) प्रलय वेला में सारे विश्व को अपने सामर्थ्य में लीन करने वाले प्रभु की (पुरुवेपसं) अनन्त बल और क्रियाओं के परम निधान परमात्मा की (अग्निं) परम प्रकाश स्वरूप प्रभु की (शुम्भामि) दिव्य ज्योतिः को अपने अन्दर ध्यान योग द्वारा संवर्धित करता हूं।

८८. यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीडवे ।
स्तोमैरिषेमाग्नये ॥ ८ । ४४ । २७.

(यज्ञानां) श्रेष्ठ विश्व कल्याण विधायक कर्मों के मध्य (रथ्ये) रथी के समान जो गन्तव्य स्थान पर इस जीवन रथ को ले जाने वाला है (तिग्म जम्भाय) और अनिष्टों तथा विघ्न बाधाओं का विनाश करने वाला है (वीडवे अग्नये) ऐसे उस सर्व सामर्थ्यवान् परम प्रकाश स्वरूप परमात्मदेव के प्रति (स्तोमैः इषेम) हम अपनी भावभीनी स्तुतियाँ समर्पित करते हैं।

८९. अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य ।
तस्मै पावक मृडय ॥ ८ । ४४ । २८.

(सन्त्य अग्ने) हे अद्वितीय दिव्य प्रकाश स्वरूप प्रभो ! (अयं जरिता) आपका यह विनम्र उपासक (ते अपि भूतु) आप में अत्यन्त प्रीति का धारण करने वाला होवे। (पावक) हे परम पवित्रता कारक प्रभो ! (तस्मै मृडय) तू अपने ऐसे उपासक की रक्षा कर और दिव्य सुख शान्ति की उस पर वर्षा कर।

९०. उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा ।
अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ ८ । ४४ । २२.

(विश्वहा) सकल संसार को गति देने वाले प्रभो ! (मम धीतयः) मेरी धारणशक्तियाँ (उत गिरः) और भक्ति भाव युक्त वाणियाँ (वर्धन्तु) आपकी दिव्य ज्योतिः का मन मन्दिर में धारण व वर्धन करने वाली होवें (अग्ने) हे विश्व नियन्ता नाथ (नः) हम अपने उपासकों को (सख्यस्य बोधि) अपने शाश्वत सख्य भाव का बोध कराओ।

९१. पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे ।
प्र ण आयुर्वसो तिर ॥ ८ । ४४ । ३०.

(अग्ने) हे परम प्रकाशस्वरूप प्रभो (कवे) हे क्रान्तदर्शी अमर काव्य वेद के प्रकाशक परमात्मन्। (वसो) विश्व भर में रमण करने वाले

स्वामिन् ! (दुरितेभ्यः पुरा) दुष्ट वृत्तियों और चेष्टाओं से ऊपर तथा (मृध्रेभ्यः पुरा) हिंसा शील प्रणियों से दूर रखते हुए (नः) हमारे (आयुः प्रतिर) जीबन की सम्यक् रक्षा करो, हमारे जीवन के ध्येय को पूर्ण करो ।

९२. अग्न आयाह्यग्निभि र्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आत्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं
बर्हिरासदे ॥ ८ । ६० । १.

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप दिव्यदेव ! (अग्निभिः आयाहि) अपनी असंख्य दिव्य प्रकाशमयी किरणों के साथ मेरे हृदय मन्दिर में प्रकाशित होवो (त्वां होतारं वृणीमहे) हे सतत दान पक्ष के विस्तारक प्रभो हम तो केवल आपको ही उपास्य देव के रूप में वरण करते हैं । (त्वां यजिष्ठं) आप परम यजनीय व पूजनीय को (प्रयता हविष्मती) निरन्तर प्रयत्न करती हुई मेरी ज्योतिष्मती बुद्धि (आ अनक्तु) सम्यक् प्रकार से आपको प्राप्त करै (वर्हिरासदे) एतदर्थं मैं अपनी हृदय की वेदी में सावधान होकर आसन जमाता हूँ ।

९३. अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र
मन्मभिः ॥ ८ । ६० । ३.

(अग्ने) हे परमज्ञानी ज्ञान के दाता प्रभो ! आप (कविः) क्रान्तदर्शी हमारे अन्दर के भावों को जानने वाले हो (होता असि) दिव्य गुणों का हमारे अन्दर आधान करने वाले हो । (पावक) हे परम पावन प्रभो ! आप (वेधा असि) विश्व के विधाता हो (यक्ष्योऽसि) और एक मात्र उपास्य देव हो (मन्द्रोऽसि) एक मात्र स्तुति करने योग्य हो (यजिष्ठोऽसि) ज्ञान यज्ञ का सतत विस्तार करने हारे हो ।

९४. पाहि नो अग्न एकया पाह्यु त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो
॥ ८ । ६० । ६

(वसो अग्ने) हे घट घट वासी दिव्य तेज के निधान नाथ (ऊर्जांपते) हे जीवन शक्ति की रक्षा करने हारे प्रभो ! आप (एकया गिरा) ऋचाओं द्वारा (द्वितीयया गिरा) यजुषों द्वारा (तिसृभिर्गीर्भिः) ऋक् यजुष और साम मन्त्रों द्वारा (चतसृभिर्गीर्भिः) तथा ऋक् यजुष् साम और छन्दों द्वारा(पाहि) हमारी रक्षा करो ।

९५. अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत ।
त्वमीशिषे वसूनाम् ॥ ८ । ७१ । ८

(अग्ने) परम तेज स्वरूप प्रभो ! (त्वं ईशिषे वसूनाम्) संसार के सर्व धन सम्पत्ति ऐश्वर्य पर आपका ही स्वामित्व है (ते देवस्य) परम-दानी आप दिव्य देव के (रातिं) दिये दान को (अदेवः) दुष्ट दुर्व्यसनी दानव (माकिः युयोत) हमसे वियुक्त न करें । दुष्ट जन कभी धनसम्पत्ति ऐश्वर्य को हम से छीन कर उसका दुरुपयोग करने वाला न हो ।

९६. अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम् ।
अग्नि तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं
तनूपाम् ॥८ । ७१ । १३

(यः वार्याणां ईशे) जो वरण करने योग्य धनों का स्वामी है ऐसा वह (अग्निः) परमपूजनीय ईश्वर (नः सख्ये) हम अपने समान ख्याति वाले मित्रों को जिससे वह कभी विलग नहीं होता (इषां ददातु) अन्न धनादि से युक्त करें । (वसुं) सब में नाम करने वाले (तनूपां सन्तम्) तथा निश्चय सब का पालन करने वाले (अग्निं) उस दिव्य देव के प्रति (तोके तनये) हम अपनी बाल और युवा सन्तति के मंगल की (शश्वतः ईमहे) सतत कामना करते हैं ।

९७. अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।
अग्निमीधे विवस्वभिः ॥ ८ । १०२ । २२.

(मर्त्यः) मरण धर्मा मानव अर्थात् निज अविनाशी, शुद्ध, बुद्ध चेतन स्वरूप को न जानकर शरीर को ही स्व समझने वाला मानव (मनसा) ध्यान योग द्वारा (धियं सचेत) अपनी बुद्धि को ज्योतिष्मती बना कर (अग्निमिन्धानः) उस दिव्य अजस्र ज्योति को अपने अन्दर प्रज्वलित करें (अग्निं ईधे विवस्वभिः) निश्चय उस दिव्य आध्यात्मिक अग्नि को संसार के महान् ज्ञानी जनों के पावन श्रेयः मार्ग पर चलते हुए, अपने अन्दर प्रज्वलित करें ।

९८. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ९ । ६६ । १९

(अग्ने) हे पावन प्राणनाथ प्रभो ! (नः आयूंषि पवस) हमारे जीवनों को पवित्र करो और उनकी रक्षा करो और (इषं ऊंर्जम) जीवन के निर्वाह योग्य शाकल्य तथा शारीरिक व आत्मिक वल (नः आसुव) हमें प्रदान करो (दुच्छुनां) दुर्गुणों और दुष्टवृत्तियों को (आरेबाधस्व) हमसे दूर भगा दो ।

९९. अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ ९ । ६६ । २१.

(स्वपाः अग्ने) हे दिव्यकर्मा परम प्रकाश स्वरूप प्रभो ! (अस्मे) मुझ अपने उपासक को (पवस्व) पवित्र करो मेरे जीवन में सम्यक् प्रकार से शुचिता का वास हो और मुझे (वर्चः) दिव्य आध्यात्मिक तेज और (सुवींयं) आध्यात्मिक वल (दधत्) प्रदान करो । और (मयि) मुझ में (पोषं रयिं दधत्) पुष्टि कारक दिव्य सम्पदा का आधान करो अर्थात् दिव्य सम्पदा से युक्त करो ।

१००. अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिं। अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥ १०। ८०। ७.

(ब्रह्म ऋभवः) ब्रह्मज्ञानी देवजन (अग्नये ततक्षुः) ज्योतिः स्वरूप परम ब्रह्म को अपने जीवन का लक्ष्य बना कर बेंध सकते हैं (सुवृक्तिं महां अग्निं) पवित्रता कारक महान् व्यापक ब्रह्म का (आ अवोचाम) हम सम्यक् प्रकार से स्तवन करते हैं (यविष्ठ अग्ने) हे पूजनीय पावन प्रभो ! (जरितारं प्राव) अपने उपासक की आप भली भान्ति रक्षा करो (अग्ने महि द्रविणं) प्यारे प्रभो ! महान आध्यात्मिक धन को (आयजस्व) मुझे सर्वविध प्राप्त कराओ ।

ओ३म् शम्

———

इन्द्र शतकम्

—:०:—

१. यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ऋ० १।४।१०

(यः) जो (रायः) धन सम्पत्ति ऐश्वर्य का (महान् अवनिः) महान् रक्षक और दाता है तथा जो (सुपारः) उत्तम रूपेण पालन पोषण करने वाला तथा हमारी जीवन नौका को संसार सागर से पार लगाने वाला है (सुन्वतःसखा) जो जनश्रद्धा भक्ति पूर्वक उसका स्तवन, व वन्दन करते हैं उनका प्यारा मित्र है (तस्मै इन्द्राय) ऐसे उस परम ऐश्वर्य शाली इन्द्रनाम से विख्यात परमात्म देवके लिये (गायत) ऐ संसार के मानवो ! तुम सच्चे हृदय से स्तुति गान करो ।

२. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ऋ० १।५।२

(पुरूणां) प्रकाश युक्त चेतन तत्वों के मध्य में जो (पुरूतमं) दिव्य प्रकाश युक्त महान् चेतन तत्व है (वार्याणां) प्राप्त करने योग्य सकल श्रेष्ठ ऐश्वर्यों का (ईशानं) जो स्वामी है। ऐसे उस (इन्द्र) दिव्य तेज एवं ऐश्वर्यशाली परमात्मदेव का (सोमे सुते) आध्यात्मिक मद अपने जीवन में उत्पन्न करते हुए (सचा) स्तवन करो अर्थात् उस की उपासना में भक्ति पूर्वक रत होवो ।

३. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ऋ० १।६।३

वह परमात्मदेव (अकेतवे) ज्ञानहीन मानवों को (केतुं कृण्वन्) ज्ञान से युक्त करता (अपेशसे) धनहीन जनों को (पेशः कृण्वन्) सुवर्ण रत्नादि धनों से युक्त करता है (मर्याः) ऐ संसार के मानवों (सं उषद्भिः) सम्यक् प्रकार से ज्ञान की किरणों द्वारा जिस प्रकार इन्द्रवती ऊषा के

साथ सम्पर्क करके मानव दिव्य आन्तरिक प्रकाश को प्राप्त होता है इसी प्रकार तुम भी (अजायथाः) होने का प्रयत्न करो। ज्ञानहीन जनों में ज्ञान की ज्योति जगाओ तथा जनता का दुःख दारिद्र दूर करो।

४. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहद् इन्द्रमर्केभिरर्किणः।

इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ऋ० १।७।१

(गाथिनः) दिव्य साम स्तोत्रों द्वारा अथवा आप्त पुरुषों की रचित गीतियों द्वारा मानव (इन्द्रं इत्) निश्चय उस परमैश्वर्यशाली प्रभु का (अनूषत) सदा गुण गान करते हैं (अर्केभिः अर्किणः) ऋग्वेद की पावनी ऋचाओं द्वारा गान करने वाले (वृहद् इन्द्रं) उस महान् ज्योतिः स्वरूप परमात्म देव का (अनूषत) गुण गान करते हैं (वाणीः) कल्याणी वेदवाणी (इन्द्रं अनूषत) निश्चय उस प्यारे इन्द्रदेव का ही सम्यक् बखान करती है।

५. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।

उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ऋ० १।७।४

(उग्र इन्द्र) हे अत्यन्त तेजयुक्त ज्योतिः स्वरूप प्यारे प्रभो! (वाजेषु) जीवन के संघर्षों में (सहस्र प्रधनेषु) नाना आधिव्याधियों के साथ लोहा लेने में (उग्राभिः) तेजोमयी (ऊतिभिः) रक्षा की प्रक्रियाओं द्वारा (नः अव) हमारी रक्षा करो। प्रभो! आप ही हमें विकट संकटों के साथ जूझने की तथा आधिव्याधियों को सहर्ष सहन करने की शक्ति प्रदान करते हो।

६. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।

युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ऋ० १।७।५

(अर्भे महाधने) छोटे और बड़े जीवन संग्रामों में (वयं) हम (इन्द्रं हवामहे) उस परम ऐश्वर्यशाली परमात्मदेव का आवाहन करते हैं। वही हमारे जीवन का रक्षक और परम सहारा है (वृत्रेषु वज्रिणम्) सूर्य जिस प्रकार मेघों को विदीर्ण करता उसी प्रकार वह शक्तिशाली प्रभु हमारे पाप वासना रूपी शत्रुओं का क्षय करने वाला है (इन्द्रं युजं हवामहे) हम उस परमप्रभु का जो हमारा अन्ततम और अभिन्न सखा है श्रद्धा समन्वित हो अपने मन मन्दिर में आवाहन करते हैं।

७. तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ।। ऋ० १।७।७

(वज्रिणः इन्द्रस्य) इस शक्तिशाली परमैश्वर्यवान् प्रभु की (तुञ्जे तुञ्जे) दुष्ट दुर्गुण नाशिनी शक्ति का निश्चय पापवृत्ति क्षय कारिणी शक्ति का हम (य उत्तरे स्तोमाः) जो श्रेष्ठतम साम स्तोम हैं उनके द्वारा स्मरण करते हैं। (अस्य) इस इन्द्रदेव की (सु स्तुति) इससे भिन्न सुन्दर श्रेष्ठ स्तुति को (न विन्धे) हम जानते ही नहीं। सामवेद के मन्त्रों में उस दिव्यदेव की स्तुति का जो भव्य वर्णन है उससे भिन्न अन्य कोई स्तुति हो ही नहीं सकती। मानव को श्रद्धा संयुक्त होकर उस पावन प्रभु की दुष्ट दुर्गण विनाशिनी शक्ति का ध्यान करना चाहिये और धैर्यपूर्वक दुष्ट दुर्गुणों से निश्चय लोहा लेना चाहिये।

८. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ।। ऋ० १।७।१०

(जनेभ्यः) समस्त प्रजाजनों के लिये जो (विश्वतः परि) सब ओर से ऊपर विद्यमान है अर्थात् सब दिशाओं से उनकी रक्षा करने वाला है (इन्द्रं) ऐसे उस महान् दिव्य धनों के धनी परमात्मदेव का (हवामहे) हम आवाहन करते हैं। वह इन्द्रदेव (अस्माकं) हमारी और (वः) तुम सबों का (केवलः) एकमेव अद्वितीय उपास्य देव है।

९. एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ।। ऋ० १।८।९

(इन्द्र) हे परमैश्वर्य शाली प्रभो! (एवा ते विभूतयः) ससार में ये जितनी तेरी विभूतियां अर्थात् ऐश्वर्य हैं वह सब (हिः) निश्चय पूर्वक (मा दाशुषे) मुझ त्याग मय जीवन व्यतीत करने वाले की (अवते) रक्षा के लिये तथा (ऊतये) उत्थान के लिये (सद्यः) अविलम्ब (चित् सन्ति) निश्चय ही विद्यमान रहती हैं अर्थात् आत्म त्याग करने वाले मानव की हर प्रकार से रक्षा व उत्थान करने में तुम सदा उद्यत रहते हो।

१०. गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद् वंशमिव येमिरे ।।
ऋ० १।१०।१

(शतक्रतो) हे असंख्य आश्चर्यजनक सृष्टि रचना आदि दिव्य कर्मों के करने हारे प्रभो! (त्वा) तुम वन्दनीय देव का (अर्किणः अर्चन्ति) अर्चन करने वाले भक्त जन सदा पूजन करते हैं तथा (त्वा गायत्रिणः गायन्ति) गायत्री आदि मधुर छन्दों का श्रद्धापूर्वक गान करने वाले तेरी अद्भुत महिमा का गान करते वा बखान करते हैं (ब्रह्माणः) ब्रह्म दर्शन की अभिलाषा रखने वाले ध्यान योग में रत ज्ञानी जन (उत वशं इव) प्रणव के जापरूप वांस पर नित्य उतरते चढ़ते हुए और इस विधि अपने मन की चञ्चलता को अवरोध करते हुए (त्वा ये मिरे) हे नाथ! निश्चय तुझको पाने में समर्थ होते हैं।

११. आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥

ऋ० १।१०। ९

(आश्रुत्कर्ण) हे सब दीन दुःखी जनों आदि की पुकार को सुनने वाले (इन्द्र) दिव्य ऐश्वर्यों के स्वामी परमात्मन् (मे हवं) मेरी पुकार को (नु श्रुधी) निश्चय पूर्वक श्रवण करो और (मे गिरः) मेरी इस भक्ति रस में सनी विनती को (चिद् दधिष्व) निश्चय स्वीकार करो (युजः चिद् अन्तरं) हे प्रभो! आप तो मेरे अभिन्न सखा हो और सदा मेरे अन्दर विराजमान रहते हो मेरे तो आप निकटतम मित्र हो (इमं मम स्तोमं) इस मेरी स्तुति को (आकृष्व) भली भान्ति अवश्य ही स्वीकार करो।

१२, विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥

ऋ० १।१०।१०

(त्वा हि वृषन्तमं) हे प्राणनाथ प्रभो! आपको ही हम सब बलों, शक्तियों और ज्ञान का परम निधान (आ विघ्न) सम्यक् प्रकार से मानते हैं (वाजेषु) जीवन के विकट संग्रामों में (हवन श्रुतं) आप ही हमारी पुकारों को सुनने वाले हो। अतः हम (हि) निश्चय पूर्वक (वृषन्तमस्य) दिव्य ऐश्वर्य की वर्षा करने वाले भी (सहस्रसातमांऊतिं) असंख्य विधि रक्षा करने वाली शक्ति का (हूमहे) आवाहन करते हैं।

१३. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥

ऋ० १।११।१

(समुद्रव्यचसं इन्द्रं) अथाह समुद्र अथवा आकाश के समान व्यापने वाले उस दिव्य ऐश्वर्यशाली प्रभु की महिमा का (विश्वागिरः अवीवृधन्) वर्धन हमारी सब स्तुतियाँ करती हैं (रथीनां रथितमं) वह परमात्मा बलशालियों में अत्यन्त बलवान (वाजानां) दिव्य ऐश्वर्यों का (सत्पतिं पतिं) रक्षण कर्त्ता और निश्चय ही श्रेष्ठतम रक्षण कर्त्ता है।

१४. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥

ऋ० १।११।२

(शवसस्पते इन्द्र) सकल ऐश्वर्यों का संरक्षण करने वाले हे दिव्य-देव (वाजिनः) हम जीवन में ज्ञानी व प्रगतिशील बनकर (ते सख्ये) और तेरी मित्रता का लाभ करके (मा भेम) कभी भयभीत न हों। (त्वां) तुझको जो (जेतारं) सारे विश्व को विजित करने वाला अर्थात् सारा विश्व जिसके अनुशासन में चलता है तथा जो (अपराजितं) कभी पराजित होने वाला नहीं अर्थात् संसार में दूसरी कोई (शक्ति) उसका सामना करने वाली नहीं। ऐसे उस प्रभु का (अभि) सम्यक् प्रकार से (नः प्र नुमः) हम भक्ति भाव पूर्वक विशेष वन्दन करते हैं।

१५. इन्द्रमीशानमोजसाभिस्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥

ऋ० १।११।८

(ओजसा ईशानं इन्द्रं) अपने अपरमित बल व शक्ति के द्वारा विश्व पर शासन करने वाले इन्द्र के प्रति (स्तोमाः अभि अनूषत) हम सम्यक् प्रकार से स्तोमों का उच्चारण करते हैं (यस्य) जिस परम ऐश्वर्यशाली इन्द्र देव की (रातयः) विभूतियों (सहस्रं सन्ति) अनगिनत हैं (उत) और (भूयसीः सन्ति) असीम हैं।

१६. इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ऋ० १।१६।३

(इन्द्रं) हम उस परमैश्वर्यशाली परमात्म देव का (प्रातः-हवामहे) प्रातःकाल की अमृत वेला में अपने मन मन्दिर में आवाहन करते हैं (प्रयति अध्वरे) जीवन के प्रत्येक संग्राम में तथा अहिंसामय यज्ञादिशुभ कर्मों के अनुष्ठान की वेला में (इन्द्रं हवामहे) उस

इन्द्र देव का आवाहन करते हैं । तथा (सोमपीतये) आध्यात्मिक सुधारस का पान करने के लिये अथवा जीवन को वहदानियत मस्ती में सरावोर करने के लिये उस (इन्द्रं हवामहे) इन्द्र देव का आवाहन करते हैं ।

१७. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ।। ऋ० १।३०।७

(सखाय:) हम सब उस प्रभु के सखाभाव को प्राप्त होकर उस की मित्रता का जीवन में लाभ करके (तवस्तरं इन्द्रं) उस अत्यन्त बल, विक्रम, तेज के निधान परमात्म देव का (योगे-योगे हवामहे) मानव जीवन के कल्याण के निमित्त किये गये प्रत्येक अनुष्ठान में आवाहन करते हैं। (वाजे वाजे) जीवन के प्रत्येक संग्राम में उसका आवाहन करते (ऊतये हवामहे) अपनी रक्षा एवं आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के निमित्त उसकी सहायता की याचना करते हैं ।

१८. इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि । अस्मिनिन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ।
ऋ० १।५१।१५

(वृषभाय) अत्यन्त सुखों की वर्षा करने वाले दयालु देव के निमित्त (सत्यशुष्माय) सज्जनहितकारी सत्यज्ञान के परम निधान (स्वराजे) तथा अपने दिव्य तेज से सदा देदीप्यमान (तवसे) परम बल पराक्रम युक्त परमात्म देव के लिये (इदं नमः अवाचि) हमारा यह वन्दन प्रस्तुत है । (इन्द्र) हे परमैश्वर्य के भण्डार इन्द्र (अस्मिन् वृजने) निश्चय जीवन के इस संग्राम में (सर्व वीराः) सब वीर पुरुष (सूरिभिः) अपने ज्ञानी मार्गदर्शक नेताओं के साथ (तव-स्मत्-शर्मन) तेरी ही उत्तम शरण में (स्याम) सदा उपस्थित होवें ।

१९. त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः । चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः-परिभूरेष्या दिवम् ।। ऋ० १।५२।१२

(त्वं) हे प्राणनाथ प्रभो ! तुम (अस्य रजसो) इस अन्तरिक्ष तथा (व्योमनः) इस आकाश के भी (पारे) परे (स्वभूति ओजाः)

अपनी सनातन सत्ता तथा अपनी अद्‌भुत् शक्ति के द्वारा (अवसे) विद्यमान होकर इन सव को धारण व रक्षण करते (धृषन्मनः) तथा हमारे सब संकल्प विकल्पों को जानते तथा ब्रह्माण्ड में मनस्तत्व की रक्षा करते हो (ओजसः प्रातमान) आप अपने वलों के अनुरूप (चक्रुषे भूमि) पार्थिव लोकों की रचना करते (चक्रुषे अपः) जलों की रचना करते (चक्रुषे स्वः) वायु तथा प्राण तत्व की रचना करते (चक्रुषे दिवं) प्रकाशमय द्यौलोक की रचना करते (परिभूः) आप सर्वत्र व्यापने वाले हो (आ इष्णः) और इन सव के अन्दर रमण भी करने वाले हो।

२०. त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः। विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा न किरन्यस्त्वावान् ॥ ऋ० १। ५२। १३

(त्वं) हे परमात्मदेव आप (पृथिव्याः प्रतिमानं भुवः) इस महती विस्तार वाली पृथिवी के निर्माता और इसकी गतिशीलता आदि के विधाता हो (त्वं) आप ही (ऋष्ववीरस्य वृहतः) इस तेजोमय महान् सूर्यलोक के (पतिः भूः) पालक और स्वामी हो (विश्वं अन्तरिक्षं) समस्त लोक लोकान्तरों तथा अन्तरिक्ष को (महित्वा आप्रा) अपनी महिमा व सामर्थ्य से परिपूर्ण कर रहे हो अर्थात् पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया से उनको रचकर धारण कर रहे हो (महित्वा सत्यं आप्रा) अपने सामर्थ्य से सव सत्तावान् पदार्थों को धारण कर रहे हो; उनके अन्दर तथा बाहर परिपूरित हो रहे हो (अद्धा) निश्चय ही (त्वावान् न किः अन्यः) आप जैसा अन्य कोई दूसरा नहीं है।

२१. एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्। अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ऋ० १। ८१। ९

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवाहन स्वामिन्! (ऐते जन्तवः) संसार के यह सव प्राणी मनुष्य, पशु, पक्षी आदि (ते) तुम्हारे (विश्वं वार्यं) सब ग्रहण व वरण करने योग्य ऐश्वर्य को (पुष्यन्ति) धारण करते और यथाशक्ति उसका उपभोग करते हैं (आर्यः) तू विश्व का स्वामी है (जनानां अन्तर् हि ख्यः वेदः) सब मानवों के अन्दर विराजमान रह कर उनको सत्कर्मों की सदा प्रेरणा देता और उनके अच्छे बुरे

कर्मों को जानता है (अदाशुषां) संसार में जो त्याग पूर्वक जीवन यापन नहीं करते और कायर तथा लोभी हैं (तेषां वेदः) उनके घन सम्पत्ति ऐश्वर्य को (नः आभर) हम संसार के श्रेष्ठ मानवों को प्रदान करते हैं।

**२२. सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशां अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥** ऋ० १।८२।३

(मघवन्) हे दिव्यैश्वर्यों के परम भण्डार परमेश्वर! (वयं) हम उपासक जन (सुसंदृशंत्वा) भली प्रकार से सब के कर्मों को देखने वाले तुझ को (वन्दिषीमहि) हम वन्दन करते हैं (नूनं) निश्चय ही (स्तुतः) सम्यक् प्रकार से वन्दित तू (पूर्णविन्धुरः) पूर्णतया अपने उपासकों को प्रेम के बन्धन में बांधने वाला है (प्र याहि) और विशेष रूप से उनको प्राप्त होने वाला है (इन्द्र) ह सरल ऐश्वर्यों के स्वामिन्। (ते हरी वशान्) पापवृत्तियों वा क्षय कर आत्म समर्पण करने वाले अपने भक्तों को (आ अनु योज) भली भान्ति अपने दिव्य प्रकाश से युक्त कर दो।

२३. यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः। यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ऋ० १।१०१।३

(यस्य) जिस परमात्मा की (महत् पौंस्यं) महतीशक्ति (द्यावा-पृथिवी) प्रकाशमान सूर्यादि तथा स्वप्रकाशशून्य पृथिवी आदि लोकों में (सश्चति) व्याप रही है (यस्यव्रते) जिसकी व्यवस्था में (वरुणः सश्चति) वायु बहता है (यस्य व्रते सूर्यः सश्चति) जिसकी व्यवस्था में सूर्य अपनी धुरी पर गति करता और संसार में तपता है (यस्य इन्द्रस्य) और जिस परमैश्ववशाली परम पुरुष की व्यवस्था में (सिन्धवः सश्चन्ति) सागर हिलोरें लेते हैं। (व्रतं मरुत्वन्तं) निश्चय ही आपकी यह व्यवस्था पूर्ण और महान् है (सख्याय हवामहे) ऐसे उस दिव्य देव की मित्रता की हम सदा कामना करते हैं।

२४. यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्। इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ऋ० १।१०१।५

(यः) जो परमात्मा (विश्वस्य जगतः प्राणतः) समस्त गतिशील प्राणी जगत् का (पतिः) पालन कर्त्ता स्वामी है (यः प्रथमः) जो सारे ब्रह्माण्ड में व्याप रहा है (ब्रह्मणे गा अविन्दन्) और जिसने दिव्य मनस्वी आत्माओं को वेद वाणी का बोध कराया है (यः इन्द्रः) ऐसा वह परमशक्तिशाली परमात्मा जो (दस्यून अवरान् अवातिरत्) दुष्ट दुर्जनों को नीचे गिराता है हम उस (मरूत्वन्तं इन्द्रं) महान् पराक्रमशाली इन्द्र की (सख्याय हवामहे) मित्रता लाभ करने की हृदय से कामना करते हैं और अपने मन मन्दिर में उसका ही आहवान करते हैं।

२५. यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः। इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधु मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ऋ० १ । १०१ । ६

(यः शूरेभिः हव्यः) जीवन संघर्ष में दृढ़ता के साथ जूझने वाले मानव जिसकी वन्दना करते हैं तथा (यः च भीरुभिः हव्यः) संघर्षों के कष्टों को सहन करने में असमर्थ मानव जिसका गुणगान करते हैं (यः धावद्भिः हूयते) कर्मक्षेत्र से भागने वाले भी जिसको पुकारते हैं और (यः च जिग्युभिः हूयते) दृढ़तापूवक कर्मक्षेत्र में विजय को लक्ष्य वनाकर आगे बढ़ने वाले जिसका स्तवन करते हैं और (यं मरूत्वन्तं इन्द्रं) जिस परम ऐश्वर्यशाली परमात्मदेव को (विश्वा भुवनानि) संसार के सब मानव (सं दधुः) सम्यक् प्रकार से अपने हृदय में धारण करते हैं उस इन्द्रदेव को (सख्याय हवामहे) हम अपना जीवन सखा बनाने के निमित्त आवाहन करते हैं।

२६. वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ऋ० १ । १०२ । ४

(इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यमय भगवन् (भरेभरे) जीवन के प्रत्येक संग्राम में [अस्माकं] हम अपने उपासकों के [अं शं वृतम्] श्रेष्ठ वल को (उत् आ अव) उन्नत करो तथा उसकी सम्यक् प्रकार से रक्षा करो (त्वया युजाः) आपके परम सखाभाव को जानते हुए और आपके गुणों को अपने जीवन में धारण करते हुए (वयं जयेम) हम जीवन में विजयी बनें (अस्मभ्यं) हम अपने उपासकों के लिये (वरिवः) श्रेष्ठ

सात्त्विक धन सम्पत्ति को (सुगं कृधि) सुगमता से प्राप्त कराओ (मघवत्) हे सबल ऐश्वर्यों के अधिपति (शत्रूणां) हमारा पतन और विनाश चाहने वाले दुष्ट जनों के (वृष्ण्या) बलों का (प्ररुज) भली प्रकार से क्षय कर दो।

२७. त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् । त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ ऋ० १।१७४।१

(राजेन्द्र) हे परम तेज और ऐश्वर्यशाली भगवन् ! तू अपने दिव्य तेज से समस्त ब्रह्माण्ड में प्रकाशमान होने वाला है (त्वं ये देवा आ रक्ष) तू संसार के सब दिव्य गुण युक्त ज्ञानी जनों की सम्यक् प्रकार से रक्षा कर (त्वं नॄ न् च पाहि) और तू समाज एवं राष्ट्र के मान्य नेताओं की रक्षा कर। (असुर) हे प्राणदाता प्रभो ! (अस्माकं पाहि) हम अपने उपासकों की रक्षा कर (मघवा) हे परमशक्ति शाली प्रभो ! (त्वं सत्पति:) तू संसार के सर्व सत्तावान् पदार्थों का स्वामी है (नः तरुत्रः त्वं रक्ष) तू हमारे वृक्षरूपी शरीरों का त्राता है अतः उनकी रक्षा कर (सत्यः वसवानः सहोदा) तू तो निश्चय ही अपनी सनातन प्रजा को शारीरिक एवं आत्मिक बलों के देने वाला है।

२८. त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभिष्याम महतो मन्यमानान् । त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ऋ० १।१७८।५

(मघवन् इन्द्र) हे विपुल ऐश्वर्यों के भण्डार महान् शक्तिशाली प्रभो ! (त्वया वयं) तेरे सहारे अथवा तेरा बल पाकर हम (महतो मन्यमानान्) अपने को महान शक्तिशाली समझने वाले (शत्रून् अभिष्याम:) शत्रुओं के बल को परास्त कर देंगे। (त्वं नः त्राता) हे जीवन-आधार प्रभो ! तू तो हमारा रक्षक है (त्वं उ नः वृधे भू:) और तू ही हमें सदा जीवन में उन्नत करने वाला है (जीरदानुं एषं वृजनं) हम आपकी कृपा से शत्रु के अन्न और बल का क्षय कर देने वाली सामर्थ्य को (विद्याम्) प्राप्त करने वाले बनें।

२९. यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना

पर्यभूषत् । यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य
मह्ना स जनास इन्द्रः । ऋ० २।१२।१

(जनासः) हे संसार के विज्ञ पुरुषो ! (यः जातः) जो अपनी चिरंतन शक्तियों के आधार पर प्रकट होकर (प्रथमः एव) निश्चय इस सब संसार के आदि में विद्यमान था (यः मन स्वान्) जो परम ज्ञानी है और सबके मनों का जानने वाला है (देवः) ऐसा वह दिव्य गुणों और शक्तियों का केन्द्र (क्रतुना देवान् पर्यभूषत्) अपने अनन्त बल से सूर्यादि प्रकाशवान लोकों को रचकर सुशोभित करता है (यस्यशुष्मात्) जिसके दिव्य बल व तेज से (रोदसी अभ्यसेतां) पृथिवी और आकाश कांपते हैं (नृम्णस्य मह्ना) अपने दिव्य ऐश्वर्य की महत्ता के कारण (सः इन्द्रः) वह इन्द्र नाम से विख्यात है।

३०. यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान्प्रकुपिताँ
अरम्णात् । यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो
द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥ ऋ० २।१२।२

(जनासः) विश्व के ज्ञानी जनो ! (यः व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत्) जो अति विरल और तरल पदार्थों से बनी और भूकम्पों से कांपती हुई पृथिवी को दृढ़ करता और उसको स्वमार्ग चक्रपर दृढ़ता से चलाता है (यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्) जो भड़कते हुए और आग उगलते हुए पर्वतों को रम्य बनाता (यः वरीयः अन्तरिक्षं विममे) जिसने पार्थिव लोकों के चहुँ ओर विस्तृत अन्तरिक्षों (Air belts) का निर्माण किया (यः द्यां अस्तम्नात्) जो सूर्यादि लोकों के ऊपर के आकाश को थाम रहा है (सः इन्द्रः) ऐसा वह अद्‌भुत् शक्तिशाली इन्द्र है।

३१ यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य
विश्वे रथासः । यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां
नेता स जनास इन्द्रः ॥ ऋ० २।१२।७

(प्रदिशि यस्य आश्वासः) प्रत्येक दिशा में अर्थात् सर्वत्र जिसका निर्देश नियन्त्रण काम करता है (यस्ये गावः) जिसके निर्देश मे गौवें आदि उपकारक पशु रहते (यस्य ग्रामाः) जिसके निर्देश में सब नगर व ग्राम बसते (यस्य विश्वे रथासः) जिसके निर्देश में बड़े २ गतिमान शक्तिशाली यान रहते (यः जजान) जिसने उत्पन्न किया (सूर्यं) इस सौर

मण्डल के नेता सूर्य को (यः उषसं जजान) जिसने ऐश्वर्यशालिनी उषा को उत्पन्न किया (यः अपां नेता) जो अथाह जल के सागरों को नियन्त्रण में रखने वाला है (सः इन्द्रः) वह वन्दनीय परमैश्वर्यशाली इन्द्र है।

३२. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते । यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ।। ऋ० २ । १२ । ६

(यस्मान् ऋते) जिसकी सहायता के विना (जनासः) मानव (न विजयन्ते) काम क्रोध लोभ मोह आदि शत्रुओं पर विजय नहीं पा सकते (यं युध्यमाना अवसे हवन्ते) पापवृत्तियों से युद्ध करते हुए मानव जिसकी सहायता की कामना करते हैं (यः विश्वस्य प्रतिमानं वभूव) जो सकल विश्व का प्रतिभवन अर्थात् आधार है (यः अच्युत च्युत्) जो बड़े से वड़े अडिग पाखण्डियों और अभिमानियों को झुका देता है (जनासः) हे संसार के मनुष्यो जानो ऐसा वह महान शक्तिशाली इन्द्र है।

३३. द्यावाचिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते । यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्र ।। ऋ० २ । १२ । १३

(जनासः) ऐ संसार के लोगो ! जानो कि (द्यावा) वड़े २ प्रकाशमान लोकलोकान्तर (पृथिवी चिद) और नाना प्रकाशहीन ग्रह और उपग्रह निश्चय (यस्मै नमन्ते) जिसको नमन करते हैं (अस्य) जिसके (शुष्मात्) बल और तेज के सामने (पर्वता चिद् भयन्ते) पर्वत व मेघ भी निश्चय भय खाते हैं (यः सोमया) जो आध्यात्मिकता के दिव्य मद से सदायुक्त रहता और (निचितः) जो सर्वव्यापक है (वज्रवाहुः) जो पापियों को दण्ड देने की अजेय शक्ति रखता (यः वज्रहस्तः) जो पाप वृत्तियों के क्षय करने की पूर्ण सामर्थ्य से सदा युक्त रहता है (सः इन्द्रः) ऐसा वह अद्वितीय वल, विक्रम और तेज का निधान पावन प्रभु है।

३४. स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता । यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ।। ऋ० २ । २० । ३

(सः नः इन्द्रः) वह हमारा प्राणघातः परमैश्वर्यशाली प्रभु है

(युवा) जो संसार को ज्ञान व गति का देने वाला, अन्यायी आततायियों का विध्वंस करने वाला है (जोहूत्रः सखा) श्रद्धा पूर्वक स्तवन करने वालों का बन्धु सखा है (शिवः) और सदा कल्याण के करने वाला है (सः नरामस्तु पात्त) वह प्रगतिशील पुरुषार्थी मानव की सदा रक्षा करता है (यः शंसन्तं ऊती प्रणेषत्) जो स्वच्छ हृदय से स्तुति गान करने वालों का अपनी क्षण शक्ति द्वारा मार्ग प्रदर्शक है (यः शशमानं प्रणेषत्) जो तत्व ज्ञान का उपदेश करने वालों का पथप्रदर्शक है (यः पचन्तं च प्रणेषत्) और जो निज बुद्धि को परिपक्व करने वाले अथवा परमात्म तत्व को निज जीवन में आत्मसात् करने वाले हैं उनका मार्ग दर्शक है (च) और (स्तुवन्तं प्रणेषत्) जो संसार में यथार्थ गुणकीर्तन करते हैं उनका भी पथप्रदर्शक है।

३५. इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि। चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥ ऋ० २। २१। ६

(इन्द्र) हे परमैश्वय शाली महान् दाता प्रभो! (अस्मे) हमारे लिये (श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि) श्रेष्ठ धनों को प्रदान करो (दक्षस्य चित्ति) वृतों के अनुष्ठान द्वारा जिन्होंने अपने जीवन में दक्षता प्राप्त की है ऐसे मानवों की सी धारणा वा चिन्तनशक्ति तथा (सुभगत्वंधेहि) दिव्य सौभाग्य हमें प्रदान करो (रयीणां पोषधेहि) नाना पशुधन सम्पत्ति के संरक्षण एवं संवर्धन की क्षमता प्रदान करो (तनूनां अरिष्ठं च धेहि) और हमें शारीरिक आरोग्यता तथा पुष्टि प्रदान करो (वाचः स्वादमानं धेहि) हमारी वाणियों में माधुर्य प्रदान करो (अन्हां सुदिनत्वं धेहि)तथा प्रभो! हमारा एक-एक दिन सुख शान्ति से भरपूर रहे।

३६. इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः॥ ऋ० ३। ३०। १

(त्वा) महान् ऐश्वर्यशाली विश्वपति परमात्मा को (सोम्यासः सखायः इच्छन्ति) दिव्य गुणों से युक्त आध्यात्मिक जीवन वाले मानव विशेष रूप से ध्याते हैं (सुन्वन्ति सोमं) वह अपने जीवन में आध्यात्मिक सुधा का सृजन करते (दधति प्रयांसि) और एतदर्थ नाना प्रकार के ज्ञानपूर्वक कर्म करते (जनानां अभिशस्ति तितिक्षन्ते) और जनता द्वारा

प्राप्त होने वाले मान सत्कार को पाकर कभी बौराते नहीं तथा जनता द्वारा किये बड़े से बड़े अपमान और ताड़ना तक का धैर्य्य पूर्वक सहन करते (इन्द्र) हे दिव्य तेज के निधान प्राणनाथ प्रभो ! (त्वत् आ हि कश्चन प्रकेतः) तुझ से भिन्न और कौन है जो उनको इस प्रकार की निरभि मानिता एवं धैर्य्य प्रदान करता है।

३७. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ। शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ऋ० ३। ३०। २२

(शुभं मघवानं इन्द्रं) हम उस परम ज्ञानी बल व तेज के निधान दिव्यं पराक्रम युक्त प्रभु का (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस जीवन संघर्ष में जो निश्चय ऐश्वर्य का देने वाला है ऐसे उस (नृतमं) श्रेष्ठतम मार्गदर्शक नेता का (उग्रं) जो अत्यन्त पराक्रमशाली है (शृण्वन्तं) और सबों की पुकारों को सुनने वाला है (ऊतये) और सब के कल्याण की भावना रखने वाला है (समत्सु वृत्राणी घ्नतं) जो साधकों द्वारा किये गये प्रत्याहारों में उनकी पापवृत्तियों का क्षय करने वाला है (संजितं धनानाम्) और सद्वृत्ति रूपी ऐश्वर्यों का प्रदाता है (हुवेम) को हम अपने मन मन्दिर में भक्ति भाव पूर्वक आवाहन करते हैं।।

३८. इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ ऋ० ३। ४०। १

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यशाली भगवन् ! (त्वा वृषभं) तुझ परम बल-वीर्य तेज निधान का (सुतेसोमे) जीवन में दिव्य मादकता उत्पन्न करने वाले, आनन्द रस को उत्पन्न करने वाले (वयं) हम (हवामहे) तेरा सच्चे हृदय से आवाहन करते हैं (सः) ऐसे तुम हे नाथ ! (मध्वः अन्धसः पाहि) हमारे जीवन के साधन माधुर्य युक्त सात्विक अभाव औषधि आदि की रक्षा करो।

३९. इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे। उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ऋ० ३। ४२। ४

(इह) अपने इस यौगिक साधन क्षेत्र में (सोमस्य पीतये) अपने उत्पन्न किये हुए आध्यात्मिक मद की रक्षा के लिये (उक्थेभिः स्तोमैः)

श्रेष्ठ भावनाओं से युक्त उत्तम स्तोत्रों द्वारा (इन्द्रं हवामहे) हम उस महान् बलशाली इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वह दिव्य देव (कुविद् आगमत्) बारंबार हमारे ध्यान-पथ पर दर्शन देवें।

४०. अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय। अहमपो अनयंवावशाना मम देवासो अनु केत-मायन् ॥ ऋ० ४ । २६ । २

(अहं) परमात्मदेव कहते हैं कि मैंने (आर्याय भूमिं अदाम) श्रेष्ठ परिश्रमी पुरुषार्थी मानवों के लिये भूमि दी है अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषार्थी मानवों को ही भूमि पर शासन करने का अधिकार दिया है। (अहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय अदाम) मैं तप त्याग मय जीवन व्यतीत करनेवाली जनता के हितमें अभीप्सित समय पर वर्षा करता हूं। (अहं अयः अनयं वावशाना) शुद्ध हृदय से कामना करने वाले जनों के लिये खारे समुद्रों से भरी पृथिवी पर मीठे पेय जलों का मैंने निर्माण किया है (देवासः) संसार के ज्ञानी जन (मम केतं अनु आयन्) मेरे द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलने का सदा प्रयत्न करें।

४१, कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ ऋ० ४ । ३१ । १

हे परम पावन प्रभो! (कया ऊती) किस श्रेष्ठ रक्षा के द्वारा (कया शचिष्ठया) किस श्रेष्ठ वाणी के द्वारा (कयावृता) किस श्रेष्ठ व्यवहार के द्वारा (सः) हम अपने उपासकों के उत्थान लिये चित्र हे अद्भुत् आश्चर्यमय प्रभो! तुम सदावृधः सदा प्रयत्नशील रहते हो तथा सखा उनकी रक्षा में सदा (आभुवत्) सम्यक् प्रकार से तत्पर रहते हो। उत्तर— (कया) दिव्य आनन्द महामद से परिपूर्ण अपने दिव्य स्वरूप द्वारा ही आप यह सब अद्भुत कार्य करते हो।

४२. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढ़ा चिदारुजे वसु ॥ ऋ० ४ । ३१ । २

(त्वा) तेरे से भिन्न (कः) हे जीवन के आधार आनन्द स्वरूप प्रभो! वह कौन है जो (सत्यः) सत्तावान् और चेतनावान् पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है (मदानां मंहिष्ठः) संसार में दिव्य मादकता उत्पादक द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ महामद है जो (मत्) मुझको (अन्धसः सत्) वायु जल अन्नादि

जीवन धारण कराने वाले पदार्थों से युक्त करता (वसु ग्रारूजे हृढ़ा) जीवन में सात्विक धनों के प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता चित् और एतदर्थं उत्साहित करता।

उत्तर—कः सत्यः ग्रानन्दघन सत्यस्वरूप प्रभु ही है।

**४३. अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शतंभवास्यूतिभिः ॥** ऋ० ४। ३१। ३

हे प्यारे प्रभो ! तू (शतं ऊतिभिः) अपने असंख्य रक्षा के साधनों द्वारा (जरिभीणां सखीनाम्) दिव्य गुणों को धारण कर तेरे सखित्व भाव को प्राप्त होने वाले तथा सच्चे हृदय से तेरी स्तुति व गुणगान करने वाले (तः) हम उपासकों का (सु अविता भवासि) तू श्रेष्ठतम रक्षक सदा रहता है।

**४४. अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥** ऋ० ४। ३१। १०

(ते शतं ऊतयः) हे जीवनाधार स्वामिन् ! तेरे सैंकड़ों रक्षा के साधन (अस्मान् ग्रवन्तु) सदा हमारी रक्षा करें। (ते सहस्रं ऊतयः) तेरे सहस्रों रक्षा के साधन (अस्मान् ग्रवन्तु) सदा हमारी रक्षा करें। (ते विश्वा ग्रभिष्टयः) हे ग्रहेतुकदया सिन्धो। जीवों का कल्याण करनेवाली तेरी समस्त स्वाभाविक कामनायें (अस्मान् ग्रवन्तु) सदा हमारी रक्षा करें।

**४५. अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये।
महो राये दिवित्मते ॥** ऋ० ४। ३१। ११

हे प्राणनाथ जीवनघन स्वामिन्। (इह) हमारे इसी जीवन में (अस्मान्) हम अपने उपासकों को (सख्याय ग्रावृणीष्व) अपना प्यारा सखा मान लो हमें अपना दिव्य सख्यभाव प्रदान करो (अस्मान् स्वस्तये ग्रावृणीष्व) हमें अपने इस जीवन में निश्चय ही दिव्य कल्याण के करने वाले कर्मों का करने वाला बना लो। (महः दिवित्मते राये आवृणीष्व) महतीदिव्य सम्पदा को प्राप्त करने वाला बना लो।

**४६, अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य।
वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥** ऋ० ४। ३१। १५

हे परम पूज्य वन्दनीय इन्द्रदेव ! (अस्माकं श्रवः) हमारे ज्ञान को (वर्षिष्ठं) सर्व श्रेष्ठ एवं (उत्तमं कृधि) उच्चकोटि का कर दो (उपरिद्यां) जिस प्रकार हमारे इस पृथिवी लोक से ऊपर लोक में (देवेषु सूर्यः) नाना-ग्रह उपग्रहों को सूर्य अपने प्रकाश से द्युतिमान् करता है। इसी प्रकार आप हमको श्रेष्ठ दिव्य ज्ञान से भरपूर कर दो।

४७. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि ।
महान्महीभिरूतिभिः ॥ ऋ० ४ । ३२ । १

(इन्द्र) हे परमैश्वर्य्यशाली प्रभो । (वृत्रहन्) तू तो काम क्रोध लोभमोहादि हमारे शत्रुओं अथवा हमारी पापवृत्तियों का हनन करने वाला है (अस्माकं अर्धं) हमारे राष्ट्र के ऐश्वर्य को (न आङ्आगहि) निश्चय ही हमें सर्व प्रकार से प्राप्त करा (महीभिः ऊतिभिः तु) तू तो निश्चय अपनी महती रक्षणशक्तियों के कारण (महान्) अत्यन्त महत्व-शाली है।

४८. वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नो नुमः ।
अस्मां अस्मां इदुदव । ऋ० ४ । ३२ । ४

(इन्द्र) हे दिव्य ऐश्वर्यों के परम भण्डार प्रभो । (वयं त्वे सचा) हम तो सदा तेरी भक्ति उपासना में संलग्न रहने वाले हैं (त्वा अभि नोनुमः) और तेरा वारंवार वन्दन करते हैं (इत्) तू तो निश्चय ही (अस्मां अस्मां) हम अपने उपासकों की हे नाथ हम अपने उपासकों की (उत् अव) निश्चय ही भली भांति रक्षा कर।

४९. सनश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः ।
अनाधृष्टाभिरा गहि । ऋ० ४ । ३२ । ५

(आद्रिवः) पतन समान सदा अपने अपने वृतों में दृढ़ रहने वाले प्रभो ! (सः ऐसा तू चित्राभि ऊतिभि) अपनी आश्चर्यजनक रक्षण शक्तियों के द्वारा (अनवद्याभिः ऊतिभिः) अपने प्रशंसनीय रक्षा के साधनो द्वारा (अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) अपने उन दिव्य रक्षा के साधनों द्वारा जिनका कभी कोई सामना नहीं कर सकता (नः आगहि) हमें प्राप्त होवे।

५०. भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः ।
युजो वाजाय घृष्वये । ऋ० ४ । ३२ । ६

(इन्द्र) हे दिव्य ऐश्वर्यों के परम आगार प्रभो (त्वा गोमतः) तुझ परमज्ञानी प्रभु के (सखायः सुप्रवतः) सखाभाव को प्राप्त हम उपासक गण सदा तेरी महती शरण में रहने वाले हैं (घृष्वये वाजाय) दुष्ट वासनाओं और पापीयसी वृत्तियों से संघर्ष करने की शक्ति के प्राप्ति निमित्त (त्वा युजः भूयामः) हम बारंबार तेरी शरण को भली भांति प्राप्त होते हैं।

५१. त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः ।
स नो यन्धि महीमिषम् । ४ । ३२ । ७

(इन्द्र) हे दिव्य ज्योतिःस्वरूप प्रभो । (गोमतः वाजस्य) तू ही दिव्य ऐश्वर्यों व बलों का (एकः ईशिष) अकेले अद्वितीय अधिपति है (सः नः) ऐसा तू हम अपने उपासकों को (मही इषम्) अतुलित दिव्य ऐश्वर्य तथा बल को (यन्धि) प्रदान कर।

५२. अभि त्वा गोतमा गिराऽनूषत प्र दावने ।
इन्द्र वाजाय घृष्वये । ४ । ३२ । ९

(इन्द्र) हे दिव्य बलों के परम आगार प्रभो (घृष्वये वाजाय) काम वासनाओं का मर्दन करने वाली दिव्य शक्ति की दावने प्राप्ति के निमित्त (गोतमा गिरा) परम पवित्र वेदवाणी के दिव्य स्तोत्रों द्वारा(त्वा) तुझ को (अभि प्र अनूषत) बारंबार सम्यक् प्रकार से ध्याते हैं।

५३. यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवामहे । ४ । ३२ ।१३

(इन्द्र) हे परमैश्वर्य शाली प्रभो । (यः चित् हित्व) जो तू निश्चय ही (शश्वतां) अपनी सनातन प्रजाओं को (साधारणः असि) अत्यन्त सरल प्रकार से प्राप्त होने वाला है (तं त्वा) ऐसे उस तुझ प्रियतम प्राण सखा को (वयं) हम श्रेष्ठकर्मा उपासक जन (हवामहे) अपने मन मन्दिर में श्रद्धा भाव से पुकारते हैं।

५४. भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्याभर ।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥ ४ । ३२ । २०

(इन्द्र) हे दिव्य संपदाओं के भण्डार प्रभो (भूरिदा) तुम तो औघड़ दानी हो अतुलित ऐश्वर्यों के प्रदाता हो (घ) निश्चय तुम तो (भूरि

दित्ससि) अपने अमृत पुत्रों को अतुलित ऐश्वर्य प्रदान करने की कामना वाले हो (नः भूरिदेहि) प्रभो ! हमें अपने महान् दिव्य ऐश्वर्य का दान कर दो (मा दभ्रं भूरि आभर) हमें अल्प ऐश्वर्य न देना।

५५. एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु। तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तो हवमानास इन्द्रम् ऋ० ५।३२।११

(शृणोमि) मैं तो सुनता हूँ कि (त्वानु) तुम तो (जनेषु) सर्व मानवों में (यशसं) अत्यन्त (जातं) प्रसिद्ध एक अद्वितीय पाञ्चजन्य सत्पति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चातुरवर्णेतिरों के परम रक्षक हो तथा (दोषावस्तर्) रात और दिन (आशसः हवमानासः) भक्ति भाव पूर्वक उपासना करने वाले जनों को (तं नविष्ठं इन्द्रं) सदा नूतन रहने वाले उसे दिव्य ऐश्वर्य को (मे जगृभ्र) मुझे प्रदान कर दो।

५६. आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे। वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥ ५।३५।३

(इन्द्र) हे अतुलित दिव्य ऐश्वर्यों के भण्डार प्रभो। (वृषन्तमस्य ते) अत्यन्त बलशाली एवं दिव्य ऐश्वर्य की वर्षा करने वाले तेरे (वरेण्यं अवः) अत्यन्त श्रेष्ठ व कमनीय संरक्षण का (आ हूमहे) हम अत्यन्त श्रद्धा के साथ आवाहन करते हैं। (आभूमिः तुर्वणिः) तू तो सकल विश्व में श्रेष्ठतम दानी एवं दिव्य ऐश्वर्यशाली है (वृषजूतिः हि) और निश्चय ही तू हमें जीवन संग्रामों में अद्भुत शक्ति प्रदान करने वाला है।

५७. त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः। सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५।३५।५

(शवसस्पये सर्वरथा शतक्रतो इन्द्र) हे सकल ऐश्वर्यों के स्वामी परमशक्तिशाली अनन्त पराक्रमों के, करने वाले दिव्य देव ! (अद्रिवः) तू तो अपने व्रतों में पर्वत की, चट्टान की भांति सदा अडिग रहने वाला है (तं अमित्रयन्तं मर्त्यं) सो तू हमारे प्रति अकारणद्वेष करने वाले मानव को (नि याहि) नीचे गिरा अर्थात् उसके दर्प घमण्ड का दमन करे।

५८. त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ऋ० ५ । ३५ । ६

(वृत्रहन्तम) हे दुष्ट दुर्जनों का संहार करने वाले प्रभो ! (वृक्त-बर्हिषः जनासः) अपने जीवन पक्ष की पावन वेदी का संरक्षण करने वाले मानव (त्वां इत्) निश्चय तुझ को ही (वाजसातये हवन्ते) दिव्य बल की प्राप्ति के निमित्त पुकारते हैं (उग्रं) तू तो निश्चय अत्यन्त तेजयुक्त है (पूर्वीषु पूर्व्यम्) और पहलों में पहला अर्थात् नित्य द्रव्यों में ध्रुव नित्य द्रव्य है।

५९. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ ऋ० ५।३९।२

(इन्द्र) हे महान् ऐश्वर्य शाली प्रभो ! (यत द्युक्षं) जिस धन सम्पदा ऐश्वर्य को (वरेण्यं मन्यसे) हमारे कल्याण के लिये आप अत्यन्त श्रेष्ठ समझते हो (तत् आभर) उससे हमें भरपूर करदो (तस्य अकूपारस्य) उस अतुलित ऐश्वर्य को (वयं) हम उपासक जन (ते दावने विद्याम) तेरी अनन्त सामर्थ्य में स्थित जानते हैं।

६०. मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ऋ० ५।३९।४

(वः) आपको (मघोनां मंहिष्ठं) उत्तम ऐश्वर्यों से सदा संयुक्त समझते हैं (चर्षणीनां राजानं) आप तो सदा अपनी शाश्वत प्रजा को दिव्य दीप्तिमय बनाना चाहते हो (प्रशस्तये) प्रशस्त जीवन निर्माण के निमित्त (पूर्वीभिः गिरः) सनातन वेद वाणी का सहारा लेकर (इन्द्रं उप जुजुषे) हम उस दिव्य ऐश्वर्य शाली देव की शरण में जाते हैं।

६१. स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः । पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ऋ० ६ । ३६ । ४

(इन्द्र) हे दिव्य तेज के भण्डार प्रभो ! (सः त्वं) उपयुक्त नाना नामों से पुकारा जाने वाला तू (आं गृणानः) हमें अपने पावन उपदेशों से भली भान्ति उपकृत करता हुआ (पुरुश्चन्द्रस्य) सब को अनेक विध हर्ष उल्लास और सुखों को प्रदान करने वाले (वस्वः रायः) और विभू-

तियों को (खाम् उप सृजा) इस प्रकार प्रदान कर दे जिस प्रकार खुदी हुई नहर प्रचुर मात्रा में जल प्रदान करती है। हे नाथ ! तू तो (जनानां) सर्वजनों का (असमः एकः) एक और अद्वितीय (पतिः वभूव) पालक और स्वामी है (विश्वस्य भुवनस्य) और इस सरल संसार का (राजा वभूव) शासक है।

६२. महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ऋ० ६। ४५।३

(अस्य) इस सर्वशक्तिमान् प्राणनाथ प्रभु के (प्रणीतयः महीः) न्याय नियम महान् है (उत) और (प्रशस्तयः पूर्वीः) इसकी महिमाएँ भी शाश्वत सनातन हैं (अस्य ऊतयः) और इसके रक्षा के साधनों का (न क्षीयन्ते) कभी अन्त नहीं होता।

६३. सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत।
स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ऋ० ६। ४५। ४

(सखायः) हे प्यारे मित्रों अथवा उस पावन प्रभु के सखा भाव को प्राप्त होने वाले मानवों (ब्रह्मवाहसे) ब्रह्म तज की प्राप्ति के निमित्त अथवा ब्रह्मज्ञान के उपार्जन निमित्त (प्र अर्चत) उस प्यारे प्रभु का विशेष रूप से अर्चन वन्दन करो (प्र गायत च) और श्रद्धा भक्ति से युक्त होकर उसके दिव्यगुणों का गान करो (सः हि) निश्चय वह ही (नःप्रमतिः मही) हमें श्रेष्ठ मेधा बुद्धि को प्रदान करने वाला है।

६४. ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम्।
गां न दोहसे हुवे ॥ ऋ० ६। ४५। ७

(गां न दोहसे हुवे) जिस प्रकार दुग्ध दोहन के निमित्त गौ को अत्यन्त प्रेम से बुलाते हैं इसी प्रकार (ब्रह्माण-सखायम्) उस अत्यन्त महान् अपने प्राण प्रिय सखा परमात्मा को (ऋग्मियं) जो अत्यन्त स्तुत्य और वन्दनीय है और (ब्रह्मवाहसं) हमें ब्रह्मतेज व ब्रह्मज्ञान से युक्त करने वाला है (गीर्भिः हुवे) पवित्र वैदिक ऋचाओं द्वारा पवित्र आध्यात्मिक गीतियों द्वारा पुकारते हैं।

६५. तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते।
अहूमहि श्रवस्यवः ॥ ऋ० ६। ४५। १०

(सत्य इन्द्र) हे सर्व जड़ चेतन सत्तावा ले द्रव्यों में रमण करने वाले सत्य स्वरूप परम ऐश्वर्यवान प्रभो । (सोमया) तू तो हमारे जीवन रस की रक्षा करने वाला है (वाजानां पते) हमारे राष्ट्र के सर्व प्रकार के बलों की रक्षा करने वाला है । हम (श्रवस्यवः) उत्तम धन ऐश्वर्य की प्राप्ति की कामना करने वाले (अहूमहि) श्रद्धाभक्ति पूर्वक तेरा आवाहन करते हैं ।

६६. अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोगो वाहिष्ठो अन्तमः ।
अस्मान् राये महे हिनु ॥ ऋ० ६ । ४५ । ३०

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो । (ते स्तोमः) तेरा स्तुत्य उपदेश (अस्माकं) हम उपासकों को (वाहिष्ठः अन्तमः भूतु) अत्यन्त हृदयग्राही हो अर्थात् हम अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उसको अपने हृदयों में धारण करने वाले बनें । प्रभो ! (अस्मान्) हम अपने भक्तों को (महे राये हिनु) महान् दिव्य ऐश्वर्य से युक्त कर दो ।

६७. ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जन-
यन्त विप्राः । अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं
पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ऋ० ७ । २२ । ६

(इन्द्र) हे दिव्य तेजके अगार प्रभो ! (ये पूर्व ऋषयः) जो पूर्ण यौगिक साधना सम्पन्न उच्च कोटि के महामानव हैं (ये च नूतनाः) और जो साधनाओं में संलग्न ज्ञानीजन हैं (विप्राः) और निरन्तर ज्ञान यज्ञ का विस्तार करने वाले हैं (ब्रह्माणि जनयन्त) जो ब्रह्मज्ञान का जनता में प्रसार करते हैं (ते अस्मे सख्या शिवानि सन्तु) वह हम सब के लिये कल्याण के करने वाले तथा हमारे स्नेही होवें और (यूयं) हे वन्दनीय देव आप (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हम अपने भक्तों की सदा कल्याण कारी पावन प्रेरणाओं द्वारा रक्षा करो ।

६८. मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥
ऋ० ८ । ४ । ७

(वृष्णो) हे अत्यन्त बल विक्रमवान् तथा निरन्तर अपनी प्रजा पर सुख समृद्धि की वर्षा करने वाले प्रभो । (तव उग्रस्य सख्ये) तुझ परम

तेजस्वी की मित्रता को पाकर हम लोग (मा भेम) संसार में कभी भय को प्राप्त न हों तथा (मा श्रमिष्म) कभी पुरुषार्थ से शून्य न हों अर्थात् जीवन में निरन्तर पुरुषार्थ पूर्वक श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले बनें। (ते अभिचक्ष्यं महत कृतं) आपसे स्वभाव से ही असीम व्यापक दृष्टि वाले हो (पश्येम तुर्वशं यदुम्) हम सदा जीवन के लक्ष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को साधने में सदा यत्नशील हों।

६९. उपह्वरे गिरीणां संगथ च नदीनाम् ।

धिया विप्रो अजायत । ८ । ६ । २८

(गिरीणां उपह्वरे) पर्वतों की कन्दराओं में (नदीनां संगमे च) तथा नदियों के संगम पर (धिया) ध्यान योग की साधना द्वारा मानव (विप्रः अजायत) परा-विद्या अर्थात् क्रियात्मक अध्यात्मज्ञान (Practical Side of spiritualism) में निष्णात होता है। ज्ञानेन्द्रिय रूपी नदियों का संगम है मन रूपी सरस्वती और नाभि चक्र से लेकर सहस्रार चक्र तक हैं इस शरीर में पर्वतों के उपह्वर अतः मनको निग्रहीत कर इन चक्रों में ध्यान लगाने से मानव तत्त्वदर्शी बन जाता है।

७०. इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मासव ।

उत प्र वर्धया मतिम् ॥ ८ । ६ । ३२

(इन्द्र) हे दिव्यज्ञान के महान् आगार स्वामिन् (इमां मे सुष्टुतिं) मेरी सम्यक् प्रकार से भली भांति रक्षा करो (उत) और हे नाथ (प्र आवर्धया मतिम्) मेरी बुद्धि को विशेष प्रकार से प्रवुद्ध कर दो अर्थात् मैं आपकी कृपा से मेधावी ज्योतिष्मती बुद्धि वाला बन जाऊं।

७१. य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।

येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥ ८ । १२ । १

(शविष्ठ इन्द्र) हे अत्यन्त बलशाली ज्योतिः स्वरूप प्रभो। (यः सोम पातमः) आपतो आध्यात्मिकता के पावन रस के परम रक्षक हो (मदः चेतति) मानव जीवन में आध्यात्मिक (चेत्रिणं) जिस मद के द्वारा आप (अत्रिणं नि आहंसि) हमारी पापवासनाओं व हीन वृत्तियों का नाश करते वा कराते हो (तं ईमहे) ऐसे आप परमकारुणिक जीवनोद्धारक को अपने मन मन्दिर में श्रद्धापूर्वक पुकारते हैं।

७२. इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥ ऋ० ८ । १२ । ५

(इन्द्र) हे दिव्य प्रकाश स्वरूप प्रभो (गिर्वण:) आप परमज्ञानी एवं वेद ज्ञान के दाता हो (समुद्र इव पिन्वत) जिस प्रकार अथाह जल का सागर पूर्णिमा को ऊपर को उछालें लेता है उसी प्रकार आप (सम् उत्र:) मानव को जीवन में ऊंची उड़ान उड़ने की प्रेरणा देते हो (इमं जषस्य) प्रभो मेरी इस सत्यपरिपूत विनती को सुनो (विश्वाभि: ऊतिभि:) आप तो अपनी अनन्त रक्षा शक्ति द्वारा (विवक्षिथ) प्राणी मात्र की रक्षा करने वाले हो ।

७३. देवं देवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।
अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥ ऋ० ८ । १२ । १९

(व: अवसे) ऐ संसार के मानवों तुम्हारी रक्षा और उत्थान के निमित्त तुमको मैं (गृणीषणि) यह उपदेश देता हूं कि तुम (देवं देवं) उस दिव्य ज्योति: स्वरूप अहेतुक दयासिन्धु परमदानी (इन्द्रं इन्द्रं) परमेश्वर्यशाली दिव्य ज्ञान के प्रदाता इन्द्र परमात्मा के सामीप्य को अपने जीवन में उपलब्ध करो (अधा) और एतदर्थ (तुर्वणे यज्ञाय) श्रेष्ठ यज्ञीय उपकार कर्मों के अनुष्ठानका भी(व्यानशु:) तुमको उपदेश देता हूं ।

७४. महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥ ऋ० ८ । १२ । २१

(अस्य)इस ज्योतिः स्वरूप इन्द्र देव की(प्रणीतयः महीः) न्याय नियम तथा व्यवस्थाएँ महान् हैं (उत) और (पूर्वी:) सनातन हैं (अस्य प्रशस्तयः)इसका अनुशासन एवं दिव्य ज्ञान भी महान् है (दाशुसे)परोपकार यज्ञ में महान् आहुति देने वाले और सदा त्यागमय जीवनयापन करने वाले मानव के लिये(विश्वा भूतानि) समस्त विभूतियों को(व्यानशुः) उसने जुटाया है ।

७५. प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् ।
मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥ ऋ० ८ । १३ । ७

हे पूजनीय इन्द्रदेव !(प्रन्नवत्) सदा ईक्षण से युक्त रहता हुवा तू (जारितुः जनया गिरः)श्रद्धापूर्वक स्तवन करने वाले जनों को दिव्यबोध प्रदान कर(हवं शृणुधी) और तू उनकी पुकारों को सुन(सुकृत्वने) श्रेष्ठ शुभकर्म करने वाले मानव के लिये (मदे मदे) तू हर्ष उल्लास और उत्साह को (आ ववक्षिय)सम्यक् प्रकार से प्रदान करने वाला है।

७६. उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी ।
नमो वृधैरवस्युभिः सुते रण ।। ऋ० ८ । १३ । ६

(उतउ)और निश्चय पूर्वक(यः) जो(कृष्टीनां एकः पतिः उच्यते) समस्त प्रजा जनों का केवल एक अद्वितीय पालन करने वाला कहाता है (इत्वशी)और उन पर अनुशासन करने वाला है (सुते रणे)इस उत्पन्न हुए रमणीय अथवा संग्राम भूमि रूप संसार में(नमोवृधैः अवस्युभिः) अत्यन्त नमनशील एवं ज्ञान के पिपासु जनों की रक्षा करने वाला है।

७७. इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ।। ऋ० ८ । १३ । १२

(इन्द्र) हे अतुलित वल विक्रम तेज के निधान प्रभो ! (सत्पते) हे समस्त जड़ चेतन विश्व के पालन हार !(गृणत्सु रयिं धारय) सच्चे हृदय से स्तवन करने वाले जनोंको तू दिव्वऐश्वर्य प्रदान करने वाला है। (सुरिभ्यः श्रवः धारय)ज्ञान के उपासकों को तू दिव्य ज्ञान का दाता है (वसुत्वनं अमृतं धारय)तथा उनको दिव्य ऐश्वर्य तथा शाश्वत सुख का दाता है।

७८. कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः ।
कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ।। ऋ० ८ । १३ । २२

(इन्द्र)हे दिव्य ज्ञान-वल-क्रियाओं के केन्द्र !(ते गिर्वणः स्तोता) वैदिक स्तोत्रों द्वारा तेरा स्तवन करने वाला भक्त (कदा) कब (शन्तमः भवाति) दिव्य शान्ति से युक्त होगा (नः) और हम अपने उपासकों को (कदा) कब(गव्येदधः) दिव्यवाणी, दिव्य प्रेरणा प्रदान करोगे (अश्व्ये-दधः)जीवन में दिव्य तेज और वल प्रदान करोगे तथा (वसौदधः) दिव्य ऐश्वर्य और विभूति से हमें सम्पन्न करोगे।

७९. प्रसम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ।। ऋ० ८ । १६ । १

ऐ संसार के मानवों ! (चर्षणीनां सम्राजं) समस्त प्रजाजनों पर शासन करने वाले और उनके हृदयों में दिव्य तेज से चमकने वाले (इन्द्रं) परमैश्वर्यशाली (नृषाहं नरं) सब पर शासन करने वाले और उनका पथ प्रदर्शन करने वाले (मंहिष्ठं नव्यं) अत्यन्त श्रेष्ठ वन्दनीय प्रभु का (गीर्भिः प्र स्तोता) दिव्य स्तोत्रों द्वारा विशेष रूप से तुम स्तवन करो।

८०. तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः ।
इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ऋ० ८ । १६ । ९ ॥

(तं इन्द्रं) उस परमैश्वर्यशाली दिव्य देव का (चर्षणयः क्षितयः) ज्ञानी मानव (वर्धन्ति) अपने मन मंदिर में गुणगान करते हैं (तं अर्केभिः वर्धन्ति, वेदकी पावनी ऋचाओं द्वारा उसका कीर्तन करते हैं (तं सामभिः वर्धन्ति) साम मन्त्रों द्वारा उसकी दिव्य ज्योतिः का अपने अन्दर वर्धन करते हैं (तं गायत्रैः वर्धन्ति) गीति छन्दों द्वारा उसकी दिव्य विभूतियों का बखान करते हैं।

८१. स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ऋ० ८ । १६ । ११

(सः इन्द्रः) वह परमैश्वर्यशाली दिव्य तेजका निधान परमात्मा जो (पुरुहूतः पप्रिः) सर्व वन्द्य एवं सर्वपालक हैं (विश्वा अति द्विषः) सकल संकटों को टालने वाला, दुष्ट दुर्जनों का दलन करने वाला तथा दुष्ट प्रवृत्तियों का नाश करने वाला है (नः) निश्चय ही हम अपने उपासकों को (नावा पारयाति) जिस प्रकार केवट नौका द्वारा पार लगाता है उसी प्रकार वह हमें भवसिन्धु से पार लगाने वाला है।

८२. ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ऋ० ८ । १७ । ३

(इन्द्र) हे परम तेज के निधान प्रभो ! (वयं ब्रह्माणः) हम ब्रह्म ज्ञान के उपासक जन (त्वा युजा) यौगिक साधनाओं द्वारा तेरे से संयुक्त होते हुए (सुतावन्तः) श्रेष्ठ सन्तान वा शिष्यों को उपलब्ध करते हुए (सोमिनः) आध्यात्मिक मस्ती में सराबोर होते हुए (त्वा सामपां हवामहे) तुझ दिव्य मद की रक्षा करने वाले सखा का मन मन्दिर में श्रद्धापूर्वक आवाहन करते हैं।

८३. वयं हि त्वा बन्धुमन्तम बन्धवो विप्रासो इन्द्र येमिम
या ते धामानि वृषभ तेभिरागही विश्वेभिः
सोमपीतये ॥ ८।२१।४

(इन्द्र) हे दिव्य ज्ञान के आगार प्रभो ! (वयं अबन्धवः विप्रास:) हम सांसारिक बन्धनों से अपने को मुक्त करने की कामना वाले तथा परा विद्या अर्थात् क्रियात्मक अध्यात्म ज्ञान के साधक हित्वा निश्चय तुझको (वन्धुमन्तं येमिम) जो हमारे सर्वश्रेष्ठ बन्धु हैं उनको अथवा जो अपने प्रेम पास के बन्धन में हमें बांधने वाले हैं उनको ध्यान योग द्वारा प्राप्त होते हैं। (वृषभ) हे परम पराक्रमशाली प्रभो ! (या ते धामानि) तेरी जो नाना प्रकार की धारण व पालन करने वाली शक्तियां हैं (तेभि: विश्वेभि:) उन समस्त शक्तियों के साथ (सोमपीतये) दिव्य आध्यात्मिक मद का पान कराने के लिये (आगही) हमारे मन मन्दिर में दर्शन दो।

८४. यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवयसीं गमेम गोमति
व्रजे ॥ ८।५१।५

(वयं) हम उपासक जन (तं इन्द्रं हूमहे) उस दिव्य ऐश्वर्यशाली परमात्मदेव का निज मन मन्दिर में आवाहन करते हैं (यः नः) वसूनां दाता जो हमें दिव्य ऐश्वर्यों का दान करने वाला है (अस्य) इसकी हम (नवीयसीं सुमतिं आ विद्म) नित्य नूतन स्तुति योग्य श्रेष्ठ वेदवाणी को सम्यक् प्रकार से जानने वाले बनें (गोमति व्रजे गमेम) और हम इन्द्रियरूपी अश्वों से युक्त इस देहरूपी रथ को गन्तव्य स्थान पर ले जाने वाले बनें।

८५. यत इन्द्रभयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तदतत्र ऊतिभिर्वि द्विषो विमृधो
जाहि ॥ ८।६१।६१

(इन्द्र) हे परमरक्षक प्रभो ! (यतः भयामहे) संसार में जिस-जिस दिशा में अथवा शक्ति वा व्यक्ति से हमें भय प्राप्त हो (ततः नः अभयं

कृधि) उन सब से हमें निर्भयता प्रदान करो अर्थात् हम निर्भय बनकर इन विरोधी शक्तियों का सामना करें (मघवन्)हे परमैश्वर्यशाली प्रभो (तव न तत शर्धि) तू हमें अपनी वह दैवी शक्ति प्रदान कर और (तव ऊतिभिः द्विषः विजाहि) हिंसा करने पर उद्यत दुष्ट जनों को दूर भगा।

८६. त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुरः इन्द्र नियाहि विश्वतः आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥ ८।६२।८

(इन्द्र)हे परम ज्योति स्वरूप प्रभो !(त्वं नः पश्चात् नियाहि) तू पीछे से छिपकर वार करने वालों से हमारी सम्यक् प्रकार से रक्षा कर (अधरात् नियाहि)नीचे की दिशा से आक्रमण करने वालों से हमें बचा (उत्तरात् नियाहि) आकाश से हम पर आक्रमण करने वालों से हमारा त्राण कर(पुरः नियाहि) और सामने पड़कर वार करनेवालों से हमें बचा (विश्वतः नियाहि) सब ओर से आक्रमण करने वालों से हमारी रक्षा कर(दैव्यं भयं) आधिदैविक बाधाओं को(अस्मत् आरे कृणुहि) हमसे दूर रख तथा (अदेवीः हेतीः) घिभौतिक आपत्तियों और प्रहारों को (अस्मत् आरे कृणुहि) हमसे दूर कर।

८७. अद्याद्य श्वः श्वः इन्द्र भास्व परे च नः। विश्वा च नो जंरितृन्त्सत्पते अहा दिव नक्तं च रक्षिषः ॥ ८।६१।१७

(इन्द्र) हे दिव्य ऐश्वर्य के परमधाम। (अद्यः अद्यः नः आस्व) तू आज और आज ही हमारी रक्षा कर(श्वः श्वः च नः भास्व) आने वाले कल में भी तुम निश्चय हमारी रक्षा करना। (परे च नः भास्व) तथा कल के बाद भविष्य में भी तुम हमारी रक्षा करना(सत्यते) सकल जड़ चेतन विश्व के स्वामिन्।(नः जंरितृन्)सच्चे हृदय से हम प्रार्थना करने वालों की(विश्वा अहा रक्षिषः) सब दिनों में हमारी रक्षा करना(दिव नक्तं च रक्षिषः) दिन तथा रात में प्रभो, हमारी रक्षा करना।

८८. इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च। यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ८।६३।६

(इन्द्रे) उस परम शक्तिशाली परमात्मदेव में (विश्वानि वीर्या) सारी शक्तियां विद्यमान है अर्थात् उसकी सामर्थ्य में इस सृष्टि के सब मूल तत्व, सत्व रज, तम परमाणु समाए हुए हैं (कृतानि च) और उन मूल तत्वों से निर्मित यह सारी सृष्टि समायी हुई है (कर्त्वानि च) उसमें संसार को रचने आदि की सब क्रियायें विद्यमान हैं (अर्का:) ज्ञान से दे दीप्यमान् मानव (यं) उस विश्व नियन्ता को (अध्वरं विदु:) अकारण किसी को दण्ड न देने वाला वन्दनीय देव समझते हैं ।

८९. उक्त्वा वन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्म द्विषो जहि ॥ ८ । ६४ । १

हे दिव्य ज्ञान के परम आगार प्रभो ! (स्तोमा उक्त्वा मन्दन्तु) हृदय से निकले हुए हमारे भक्ति स्तोभ तुझे रिझाने वाले हों (अाद्रिवः राधः कृणुष्व) सभी नाश को प्राप्त न होने वाले धन को अर्थात् सनातन ज्ञान रूपी धन को हमें प्रदान करो (अव) प्रभो ! दिव्य धन द्वारा सदा हमारी रक्षा करो (ब्रह्मद्विषः जहि) ज्ञान के प्रति द्वेष करने वाले जनों को हमसे सदा दूर करो ।

९०. त्वमीशिसे सुतानमिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ ८ । ६४ । ३

(इन्द्र) हे परम शक्तिशाली प्रभो । त्वं ईशिसे सुतानांम्) तुम रचना में आए हुए सर्वलोक लोकान्तरों तथा योनियों पर शासन करने वाले हो तथा (त्वं ईशिसे असुतानां) तुम रचना में न आए हुए सत्व रज तमात्मक परमाणुओं अर्थात् प्रकृति पर और अशरीर वाले जीवों पर भी शासन करने वाले हो (त्वं राजा जनानां) निश्चय तुम ही सर्व प्राणधारी जीवों पर भी शासन करने वाले हो ।

९१. यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः
आ याहि तूयमाशुभिः ॥ ८ । ६५ । १

(इन्द्र) हे परम ज्योतिः स्वरूप प्रभो ! (यत् प्राक् अपाक् उदङ् न्यग्वा) जिस भी पूर्व, पश्चिम, ऊपर नीचे भी दिशा में (नृभिः

हूयसे) तू मानवों द्वारा पुकारा जाता है अथवा मानव तेरे अद्‌भुत् शक्तियों का स्मरण करते हैं (तूयं आशुभिः आ याहि) निश्चय ही तू उनको अपनी ज्ञान-रूप किरणों से प्राप्त होता है। अर्थात् पूर्व, पश्चिम, आदि सब दिशाओं में अग्नि, इन्द्र, सोम, वरुण, विष्णु बृहस्पति आदि नामों से पुकारे जाने वाले प्रभो ! तू मानवों को अपने दिव्य प्रकाश की झलक दिखलाता है।

९२. सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।

इदं नो बर्हिरासदे ।। ८ । ६५ । ६

(वयं प्रयस्वन्तः) हम सदा उद्यम परिश्रम पुरुषार्थ से युक्त जन (सुतावन्तः) तथा श्रेष्ठ कर्मों का तत्परता से अनुष्ठान करने वाले उपासक (त्वा हवामहे) तेरा भक्तिपूर्वक आवाहन करते हैं। हे नाथ ! (इदं नः बर्हिः आ सदे) हमारे इस हृदय की वेदी पर आ विराजो अर्थात् अपने दिव्य दर्शन से हमें कृत-कृत्य करो।

९३. तं त्वा यज्ञेभि रीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम्,

इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ।।

८ । ६८ । १०

(इन्द्र) हे परम ज्योतिः स्वरूप प्रभो ! (यथा पुरुमाय्यं वाजेषु आविथ) जिस प्रकार आप जीवन के विकट संग्रामों में संलग्न कर्मठ मानवों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार हमारी भी रक्षा करो (तं गिर्वणस्तम् गीर्भिः) आपकी दिव्य वाणी को धारण करने वाले हम आपके वन्दी जन आपका वन्दन करते हैं (तं त्वा यज्ञेभिः ई महे) और आपका अपने निष्काम कर्मों द्वारा अर्चन करते हैं।

९४. अभि प्र गोपीतं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।

सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ।। ८ । ६९ । ४

(यथा विदे) ऐ संसार के मानवो ! सम्यक् प्रकार से दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त (गोपीतं इन्द्रं) दिव्य ज्ञान के परम निधान परमात्मदेव का (गिरा प्र अभि अर्च) सुन्दर वाणी से भली प्रकार अर्चन करो (सत्यस्य सूनुं अर्च) सत्य ज्ञान के प्रदाता का

अर्चन करो (सत्यपति अर्चं) सत्पुरुषों के परम रक्षक व सहायक देव का वन्दन करो।

९५. अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न घृष्ण्वर्चत ।।

८ । ६९ । ८

(प्रियमेधास:) ऐ बुद्धि की विशेष रूप से कामना करने वाले मानवों (अर्चत) तुम अर्चन करो (प्र अर्चत) अत्यन्त श्रद्धा से युक्त हो कर अर्चन करो (अर्चत) नित्य वारंवार अर्चन करो (पुत्रका अर्चन्तु) ऐ दु:खों से छूटने की कामना वाले मानवो तुम अर्चन (पुरं न घृष्णु:) दुष्ट आततायी जनों से रक्षा करने वाले दुर्ग समान उस दिव्य देव का (उत अर्चत) निश्चय तुम अर्चन करो।

९६. इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानं मोजसा ।
मरूत्वन्तं न वृञ्जक्षे ।। ८ । ७६ । १

(इमं मायिनं हुव) मैं इस सकल सृष्टि के स्वामी का अपने मन मन्दिर में आवाहन करता हूँ (नु) निश्चय पूर्वक (ओजसा ईशानं इन्द्रं हुव) अपने महान् पराक्रम विश्व के शासन कर्त्ता इन्द्र देव का आवाहन करता हूँ (वृञ्जसे मरूत्वन्तं न) दुर्गुणों के नाश होने वाले महान् बलशाली शासक के रूप में मैं उसका अर्चन करता हूँ।

९७. वृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिर जनयन्नृता वृधो देवं देवाय जागृति

८ । ८९ । १

(मरुत:) ऐ संसार के संयत भाषण करने वाले वाग्मी जनों (ऋतावृध:) ऋत ज्ञान को सदा अपने अन्दर बढ़ाने वाले मानवों (येन देवं ज्योति: अजनयन्) जिस पावन प्रभु की कृपा से दिव्य ज्योति: का साक्षात् किया जा सकता है ऐसे उस (वृहत् इन्द्राय गायत) महान् इन्द्र देव का स्तवन करो (वृत्रहन्तमं) दुष्ट दुर्गुण नाशक इन्द्र देव का ध्यान धरो (दे वाम जागृति) उस दिव्य देव की दिव्य ज्योति के दर्शन के लिये सदा जागरूक रहो।

९८. त्वं दाता प्रथमो राधसामयसि सत्य ईशानकृत ।
तुवि द्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महा ॥

८ । ९० । २

(सत्यईशानकृत्) हे सत्य स्वरूप संसार के शासन कर्त्ता प्रभो ! (त्वं राधसां प्रथमः दाता अयसि) तू ही संसार में धन सम्पत्ति ऐश्वर्य का सर्व श्रेष्ठ दानी है (असि) और निश्चय तू ही दानी है (तुविद्युम्नस्य युज्यः) तू ही अपार ऐश्वर्य व तेज से हमें युक्त करने वाला है (शवसः महः) तू महान् ऐश्वर्यशाली है (पुत्रस्यवृणीमहे) हमें ऐसे दुःखों से त्राण कराने हारे प्रभु का वरण करते हैं अपने मन मन्दिर में उसका प्रतिष्ठा करते हैं ।

९९. भद्रं भद्रं न आभरेषमूर्जं शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ८ । ९३ । २८

(शतक्रतो इन्द्र) हे अनन्त बल वीर्य विक्रमवान् प्रभो । तू तो औघड़ दानी है (इषं उर्जं आभर) धन वैभव तथा शक्ति का सदा देने वाला है (भद्रं भद्रं न आभर) सदा हम अपने उपासकों का कल्याण ही कल्याण करने वाला है (नः मृडयासि) प्रभो ! आपका अनुग्रह तो सदा हम पर रहता ही है ।

१००. त्वं हिनः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूवि थ । अथा ते सुम्नमीमहे ॥ ८ । ९८ । ११

(वसो) हम सब को आश्रय देने वाले दयालु देव । (त्वं हिनः पिता) तू ही हमारा पिता अथ तू पालनहार है (शतक्रतो) हे अनन्त दिव्य क्रियाशील प्रभो ! (त्मं माता बभूविथ) तू ही हमारी माता है अर्थात् हमें जीवन में सच्चा सुख व मान देने वाली है (अथो) इन्हीं सब हेतुओं से (ते सुम्नमीम हे) हम श्रद्धा युक्त हो तेरा सदा गुण गान करते हैं तेरी ही कामना करते हैं ।

—:o:—

॥ ओ३म् ॥

सोम-शतक

सोम (The Bliss Dinna)

१. त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् । तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १।९१।१

(सोम) जीवन में दिव्यता सरसाने वाले पावन प्रभो! (त्वं मनीषा प्रचिकितः) आप दिव्य मनन शक्ति द्वारा हमें अन्तर्बोध कराने वाले हो (त्वं रजिष्ठं पन्थां अनुनेषि) निश्चय आप हम अपने उपासकों को सीधे सरल मार्ग पर चलाने वाले हो (इन्दो) हे प्रकाश स्वरूप दिव्य आनन्द के भण्डार स्वामिन्! (नः धीराः पितरः) हमारे स्थित प्रज्ञ तपस्वी साधक जन (तव प्रणीती) आपके दर्शाये सीधे सरल कल्याण-कारी मार्ग पर चलकर (देवेषु) दिव्य शक्तियों और गुणों को प्राप्त करते हुए (रत्नम् अभजन्त) निज जीवन में रत्न धन अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मरूपी दिव्य धन को उपलब्ध करते हैं। वह दिव्य धन जो कभी नष्ट नहीं होता उसको पाना ही मानव जीवन का श्रेष्ठत्तम कर्त्तव्य है। परम पुरुष प्रदर्शित सीधे सरल मार्ग पर चलकर ही मानव उस धन को पाने में समर्थ होता है और अपने जीवन के लक्ष्य को साध सकता है। दिव्य प्रकाश का केन्द्र एवं जीवन में दैवी मादकता उत्पन्न करने वाला इन्दु अर्थात् सोम परम पावन परमात्मा ही है।

२. त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः । त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ १।९१।२

(सोम) हे जीवनाधार प्यारे प्रभो! (त्वं क्रतुभिः सुक्रतुः भूः) आप अपनी दिव्य क्रिया शक्ति के कारण सुक्रतु हो (त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः) आप अपने पूर्ण दिव्य ज्ञान के कारण विश्ववेदा परमज्ञानी

हो (त्वं वृषत्वेभिः वृषा महित्वा) आप असंख्य बलों के भण्डार होने के कारण महा महिमामय वृषा हो (त्वं द्युम्नेभिः नृचक्षाः द्युम्नी अभवः) आप अपने विश्व व्यापी दिव्य ज्ञान प्रकाश के कारण सब के हृदयों को जानने वाले द्युम्नी कहाते हो ।

सुक्रतुः सुदक्षः विश्ववेदाः वृषा द्युम्नी नृचक्षाः आदि शब्द परमात्मा के दिव्य स्वरूप के बोधक हैं ।

३. त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १ । ९१ । ४

(सोम) हे परम रक्षक जीवनाधार स्वामिन् । (त्वं सत्पतिः असि) आपही हमारे श्रेष्ठतम पालनहार सदा रक्षा करने वाले हो (त्वं राजा असि) आप ही हमारे हृदय के स्वामी और उसमें प्रकाशित होने वाले हो (उत त्वं वृत्रहा) आप ही पाप वृत्तियों और अज्ञान अन्धकार के विदीर्ण करने वाले हो (त्वं भद्रः असि) आप निश्चय कल्याण स्वरूप और कल्याण के करने हारे हो (त्वं क्रतुः असि) तथा आप ही भजनीय उपास्यदेव हो ।

४. त्वं च सोम नो वशे जीवातुं न भरामहे ।
प्रिय स्तोत्रो वनस्पतिः ॥ १ । ९१ । ६

(सोम) के अत्यन्त कमनीय जीवनाधार प्रभो ! (त्वं नः वशे) आप हम सब पर नियन्त्रण करने वाले हो । (च) और (जीवातुं न भरामहे) जिन हमको आप जीवित रखना चाहते हो संसार की कोई शक्ति उनको मार नहीं सकती । परमात्मा के न्याय नियमानुसार जिस प्राणी का जितना जीवन है उसका कोई अन्त नहीं कर सकता ।

"जा को राखै साइयाँ मार सके ना कोय" ।

५. त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते ।
दक्षं दधासि जीवसे ॥ १ । ९१ । ७

(सोम) हे सर्वोत्पादक परमेश्वर । (ऋतायते) सत्य ज्ञान व दिव्य शक्ति की कामना करने वाले (महे यूने) महान् संयमी प्रगतिशील

कर्मयोगी मानव को (त्वं भगं दधासि) आप दिव्य ऐश्वर्य से संयुक्त करते हो (जीवसे दक्षं दधासि) दीर्घ काल तक जीने की सामर्थ्य प्रदान करते हो।

६. त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ १।९१।८

(सोम) हे आध्यात्मिक मद के अथाह सागर। (त्वं राजन्) आप सकल ब्रह्माण्ड के शासक और नियन्ता हो (नः विश्वतः अघायतः रक्षा) हानि पहुँचाने वाले दुष्टजनों से आप सब प्रकार से हमारी रक्षा करने वाले हो (त्वा अवतः) जिसके आप रखवारे हैं (त्वं सखा) और जिसके आप मित्र हैं (न रिष्येत्) वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता।

७. सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे।
ताभिर्नोऽविता भव ॥ १।९१।९।

(सोम) हे जीवनाधार प्राणप्रिय प्रभो। (दाशुषे) त्यागमय जीवन व्यतीत करने वाले मानव के लिए (याः ते मयोभुवः ऊतयः सन्ति) जो अत्यन्त सुखदायी आपके रक्षा के साधन हैं (ताभिः नः अविता भव) उन सब साधनों के द्वारा हे रक्षक प्रभो! हमारी रक्षा करो।

८. इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि।
सोमत्वं नो वृधे भव ॥ १।९१।१०

(सोम) हे परम पावन प्रभो! (इम यज्ञं) हमारे इस निष्काम भाव से किये गये निष्काम कर्म की (इदं वचः) और हमारी इस सत्य परिपूत वाणी को (जुजुषाणः उपागहि) स्वीकार करते हुए हमें प्राप्त हो अर्थात् हमारे अन्तःकरण में अपनी दिव्य ज्योति का प्रकाश करो (त्वं नः वधे भव) आप सब प्रकार से हमारी वृद्धि करो।

९. सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः।
सुमृडीको न आविश ॥ १।९१।११

(सोम) हे दिव्य प्रकाश के आगार प्रभो। (वयं) हम सब तेरे

उपासक (त्वा गीर्भिः वचोविदः वर्धयामः) अपनी श्रद्धा समन्वित स्तुतियों द्वारा हम ज्ञान के उपासक तेरा गुण गान करते हैं-तेरी महिमा का बखान करते हैं (सुमृडीकः नः आविश) आप हमारे मन मन्दिर में अपनी दिव्य ज्योतिः की छटा सरसा दो और हमारा कल्याण कर दो।

१०. गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः।
सुमित्रः सोम नो भव ॥ १।९१।१२

(सोम) हे वन्दनीय आनन्दघन प्रभो! आप (गयस्फानः) हमारे ऐश्वर्य तथा गौ आदि पशु धन की वृद्धि करने हारे हो (अमीवहा) दुष्ट दुर्गुणों तथा रोगों के नाश करने वाले हो (वसुवित्) समस्त प्रजा-जनों को लाभ पहुँचाने वाले हो (पुष्टिवर्धनः) गौ अन्न आदि पुष्टिकारक धनों की वृद्धि कारने हारे हो (सुमित्रः नः भव) आप हमारे अत्यन्त हितकारक मित्र हो। हमको अवनति के मार्ग से सदा बचने की प्रेरणा देने वाले हो।

११. सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥ १।९१।१३

(सोम) हे जीवनधन सोम! (रारन्धि नः हृदि) आप हमारे हृदयों में भक्ति रस का सञ्चार कर दो (गावः न यवसेषु आ) जिस प्रकार गौवें तन्मयता के साथ हरे अन्न जौ का सेवन करती हैं (मर्य इव स्व ओक्ये) और जिस प्रकार एक आचारवान् सद्गृहस्थी अपने गृहस्थ धर्म का पालन करता है उसी तन्मयता के साथ मैं आपनी भक्ति में मग्न हो जाऊँ।

१२. यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः।
तं दक्षः सचते कविः ॥ १।९१।१४

(सोम) हे जीवनाधार प्रभो! (देव) हे दिव्य गुणागार स्वामिन्! (यः मर्त्यः) जो मरण धर्म मानव अर्थात् वह मनुष्य जिसने अपने निज शाश्वत शुद्ध बुद्ध चेतना स्वरूप को नहीं पहचाना है और इस भौतिक शरीर को ही आप समझा है (तव सख्ये रारणत्) यदि वह आपके दिव्य गुणों को अपने अन्दर धारण करने लगता है (दक्षः कविः)

और सत्य में अनन्य प्रीतिमान् बन कर क्रान्तदर्शी बन जाता है और अपने अन्दर आपकी दिव्य ज्योति को निरखने वाला बन जाता है (तं) वह आपको (सचते) प्राप्त होता है अर्थात् आपके दिव्य आनन्द को प्राप्त करने वाला बन जाता है।

१३. उरूष्याणो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १।९१।१५

(सोम) हे परम पुरुष परमात्मन्। (सखा सुशेव) आप हमारे चिरन्तन सखा हो और सदा हमें सुखों के देने हारे हो (नः अभिशस्ते आ उरुष्य:) अकारण निन्दा और दोष दर्शन करने वाले तथा हमको हानि पहुँचाने वाले दुष्ट जनों से हमारी सम्यक् प्रकार से रक्षा करो (अंहसः नि पाहि) हमें सदा पाप कर्मों से बचाओ तथा (नः एधि) हमें श्रेयः मार्ग पर चलने की शक्ति और बुद्धि प्रदान करो।

१४. आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ २।९१।१७

(सोम) हे दिव्य आनन्द के परम आगार! (मदिन्तम) हे दिव्य मादकता के श्रेष्ठतम भण्डार! (विश्वेभिः अंशुभिः) अपनी दिव्य ज्योति की समस्त किरणों से (नः आप्यायस्व) हम अपने उपासकों को सराबोर कर दो (नः वृधे सुश्रवस्तमः सखा आ भव) और सब प्रकार से हमारे उत्कर्ष एवं उत्थान के लिए आप परम ऐश्वर्य और दिव्यज्ञान के दाता हो जाओ।

१५. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनय-
स्त्वं गाः। त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा
वितमो ववर्थ ॥ १।९१।२२

(सोम) हे जीवनाधार प्यारे प्रभो! (त्वं इमाः विश्वाः ओषधीः अजनयः) आपने ही इन नाना प्रकार के गुणकारक अन्नादि पदार्थों को रचा है (त्वं अपः अजनयः) आपने हमारे जीवन के आधार सुन्दर नाना प्रकार के पेय जलों का निर्माण किया है (त्वं गाः अजनयः)

आपने दुग्ध घृतादि के निमित्त नाना प्रकार के उपकरण गौ आदि पशुओं की रचना की है (त्वं उरु अन्तरिक्षं आततन्थ) आपने ही हमारे कल्याणार्थ इस पृथ्वी मण्डल के चहुं ओर विस्तृत वातावर्त्त (Air-belt) को रचा है जहां मेघों का निर्माण होता और हमारे लिए सुखकारक जलों की रचना होती तथा जो उल्का आदि से हमारी रक्षा करते हैं (त्वं ज्योतिषा) आपने सूर्यादि को रचकर उनकी ज्योतियों से पृथिवी तल के (तमः विववर्थं) अन्धकार को विनष्ट किया है।

१६. अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्। किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य ॥ ८।४८।३

(अमृत) हे शरीरादि के बन्धन में कभी न आने वाले दिव्य आनन्द स्वरूप प्रभो! (सोमं अपामः) हम तो आपकी कृपा से दिव्य आनन्द रस का पान करते हैं (अमृताः अभूमः) जीवन में अमर पद को प्राप्त करते आवागमन के चक्र से छूट कर मोक्ष पद को पाते हैं (अविदामः देवान्) अपने अन्दर दिव्य गुणों का आधान करते और (अगन्म ज्योतिः) आप की दिव्य ज्योतिः का साक्षात्कार करते हैं (किं नूनं अस्मान् अरातिः कृणवत्) शत्रुओं की सामर्थ्य नहीं कि हमारा बाल भी बांका कर सकें (किमु मर्त्यस्य धूर्तिः) धूर्त जन हमें क्या हानि पहुँचावेंगे। जब आपकी रक्षा का हाथ हमारे ऊपर है तो कोई हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

१७. त्रातारो देवा अधिवोचतानो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः। वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ ८।४८।१४

(वयं विश्वह सोमस्य प्रियासः) हम तो निरन्तर प्रतिदिन उस प्रजाओं के पालक जीवनधन प्राणनाथ प्रभु की उपासना कर उसकी परम प्रीति का सम्पादन करते हैं (वयं सुवीरासः) हम अपने बलवीर्य विक्रम की भलीभांति रक्षा करते हैं (वयं विदथं आवदेम) हम तो अपने जीवन में सदा सत्य का आचरण करने वाले तथा सत्य ही

बोलने वाले बनते हैं। (त्रातारः देवाः) सदा रक्षा करने वाले वीर धीर पुरुष (नः अधिवोचता)सदा हमें उपदेशों से कृतकृत्य करते हैं (नः निद्रा मा ईशत) हम कभी आलस्य प्रमोद के वशीभूत न हों (मा जल्पिः ईशत) तथा छलिया जनों के वाग्जाल में हम कभी फंसने वाले न हों तथा कभी ठकुरसुहाती बातों के फन्दे में भी न आवें।

१८. अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः।
ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ ८। ७९।१

(अयं सोमः) यह हमारे जीवन का आधार प्यारा सोम (कृत्नुः) इस सकल संसार को रचने हारा है (अगृभीतः) किन्तु हम इन्द्रियों द्वारा उसका ग्रहण नहीं कर सकते (विश्व जित्) यह सारा संसार उसके शासन में चलने वाला है (उद्भित् श्व) और वही पृथिवी में नाना प्रकार की वनस्पति अन्न ओषधियों को उत्पन्न करने वाला है। (काव्येन ऋषिः) वह सोम अपने अनादि ज्ञान वेद का प्रकाश करने वाला क्रान्तदर्शी परम पुरुष है (विप्रः) अपनी सन्तान को ज्ञान का प्रकाश देने वाला है।

१९. सुशेवो नो मृडयाकुरदृप्तक्रतुरवातः।
भवा नः सोम शं हृदे ॥ ८। ७९। ७

(सोम) हे जीवनाधार प्राणनाथ प्रभो! (नः सुशेवः) आप तो सदा हमें दिव्य सुख से संयुक्त करने वाले हो (नः मृडयाकुः) आप तो हमारे लिए अहेतुक दयासिन्धु हो (अदृप्तक्रतुः) आपका यह दान सब प्राणिमात्र के कल्याण के निमित्त सदा चलता रहता है और स्वभाव से परम कारुणिक होने के कारण आप कभी अपने अन्दर अभिमान को लाने वाले नहीं (अवातः) आप तो सदा निश्चल एक रस शान्त रहने वाले हो (भवा नः शं हृदे) प्रभो! आप हमारे हृदयों में अपने दिव्य शान्त रस का संचार कर दो।

२०. मा नः सोम संवीविजो मा विवीभिषया राजन्।
मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८। ७९। ८

तेरे हम उपासक कभी शोकातुर और उद्विग्न न हों (मा नः विवि-

भिषया) और न हम कभी किसी से भयभीत हों (मा नः हार्दि त्विषा वधीः) तथा शत्रुओं के भयानक अस्त्र शस्त्र भी कभी हमारा भेदन न कर सकें। निश्चय जिसका जीवन शेष है उसको कोई मार नहीं सकता।

२१. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ ९।१।१

(सोम) हे जीवनाधार प्यारे! प्रभो! (स्वादिष्ठया) आप अपनी अत्यन्त मधुर (मदिष्ठया) एवं जीवन में आध्यात्मिक मादका (सरूरे वह-दानियत) को सरसाने वाली (धारया पवस्व) पवित्र तेज और ज्ञान की धारा से हमें पवित्र कर दो। हम आपके तेज से तेजस्वी बन, आपके दिव्य ज्ञान से ज्ञानी बनकर जीवन में दिव्य मादकता में सदा सराबोर रहने वाले बन जावें (इन्द्राय पातवे सुतः) मैं ज्ञान यज्ञ द्वारा निष्पन्न आप की इस धारा में मज्जन कर दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला बन जाऊं।

२२. वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ९।१।३

(वरिवः धातमः भव) प्रभो! आप तो हम अपने उपासकों को अपनी शरण में सम्यक् प्रकार से धारण करने वाले हो (मंहिष्ठः वृत्र हन्तमः भव) प्रभो! आप तो सर्वश्रेष्ठ बलशाली शत्रुविनाशक हो आप से बढ़कर हमारे अज्ञानादि शत्रुओं का विदीर्ण करने वाला इस संसार में और कौन है। आप तो (मघोनांपर्षि राधः) दिव्य ऐश्वर्यों के दाता और उनकी हम पर सदा वर्षा करने वाले हो।

२३. त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे।
इन्दो त्वे न आशसः ॥ ९।१।५

(इन्दो) हे सकल ऐश्वर्यों के अधीश्वर! (दिवे दिवे) प्रतिदिन सायं व प्रातः की अमृत वेलाओं में विशेष रूप से (त्वां अच्छा चरामसि) आप के सामीप्य को भक्ति द्वारा भली प्रकार प्राप्त करने का यत्न करते

हैं (तत् इत् अर्थं) वह धन जिसकी हमें चाह है आप ही तो हो। निश्चय आप तो वह धन हो जिसका कभी विछोहा नहीं होता (त्वे नः आशसः) प्रभो आप ही पर तो हमारी सारी आशाएं आधारित हैं। आप से भिन्न हम किसकी शरण में जावें। बस आप ही तो हमारी आशाओं के सम्बल हो।

२४. पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या।
इन्दोमिन्द्रो वृषाविश ।। ९।२।१

(सोम) हे परम पावन प्रभो! (पवित्रं) आप अत्यन्त पवित्र हो तथा पवित्रताकारक हो (देववीः) आप सदा ज्ञानी जनों को प्राप्त होने वाले हो (अति रंह्या पवस्व) आप शीघ्र से शीघ्र हम अपने उपासकों को पवित्र करो। हमारी पापवृत्तियों का क्षय करो (इन्दो) हे परमैश्वर्य-वान् प्रभो! (वृष) आप तो वृष हो अर्थात् सदा हम पर अपने दिव्य ऐश्वर्य की वर्षा करने वाले हो (इन्द्रं अविश) प्रभो! अपने उस दिव्य ऐश्वर्य से हमें युक्त कर दो।

२५. अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः।
अपो वसिष्ठ सुक्रतुः ।। ९।२।३

हे पतितपावन प्रभो! आप (अपः) सर्वत्र व्याप्त हो (वसिष्ठः) सर्व श्रेष्ठ तथा (सुक्रतुः) दिव्यकर्मा हो (सुतस्य वेधसः) आत्मदर्शी ज्ञानी मानव की (धारा) वाणी में (प्रियं मधु) कमनीय माधुर्य का (अधुक्षत) सञ्चार कर दो।

२६. तंत्वा मदाय धृष्वयउलोक कृत्नुमीमहे।
तव प्रशस्तयो महीः ।। ९।२।८

(धृष्वय मदाय) जीवन के संघर्षों में आध्यात्मिक मस्ती के निमित्त (तं त्वा उ लोक कृत्नुं) निश्चय उस आप की ही जो समस्त लोक-लोकान्तरों तथा असंख्य मानव पशु-पक्षी आदि योनियों के निर्माता ही (ईमहे) हम कामना करते हैं। हृदय से आप की चाहना करते हैं (तव)
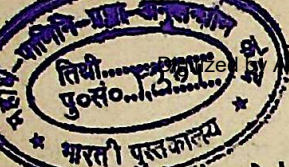
प्रवास्तस्य महो:) प्रभो ! आप की महिमा निश्चय अपरंपार है। बड़े से बड़ा ज्ञानी भी कभी उसका पार नहीं पा सकता।

२७. एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ९।३।१३

(एषः देवः) यह दिव्य गुणों का भण्डार कामनीय सोम जो हमारे जीवन में दिव्य मादकता को उत्पन्न हरने वाला है (हरिः) और हमारे सब दुःख दारिद्रयों को हरने वाला है। हमारी पाप वृत्तियों का नाश करने वाला है और (पवमानः) निश्चय हमारे जीवन को पवित्र करने वाला है (विपन्युभिः) श्रद्धा समन्वित हो प्रभु गुण गान करने वाले जनों द्वारा। (ऋतायुभिः) तथा जीवन में सदा सत्य का आश्रय लेने वाले मानवों द्वारा (वाजाय) जीवन में दिव्य आध्यात्मिक बल की प्राप्ति के निमित्त (मृज्यते) हृदय मन्दिर की गहरी गुफा में खोजा जाता है अर्थात् सदाचारी भक्तजन ही उस प्यारे परम मीत की अपने अन्दर खोज करने में समर्थ होते हैं।

२८. सन्नाज्योतिः सना स्वर्विश्वा च सोम सौभगा।
अथानोवस्य संस्कृधि ॥ ९।४।२

(सोम) हे जीवनाधार प्रभो ! (समाज्योतिः) हम अपने भक्तों को दिव्य ज्योतिः प्रदान करो (सता स्वः) दिव्य सुख अर्थात् आनन्द प्रदान करो (च) और (विश्वा सौभगा सन) पूर्ण दिव्य ऐश्वर्य से युक्त कर दो (अथा नः) और हमें (वस्यसः कृधि दैवी सम्पत्ति से युक्त कर दो।

२९. पवितारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९।४।४

(पवितारः) ऐ निज जीवन में पवित्रता का सञ्चार करने वाले मानवों (इन्द्राय पातवे) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति और उसकी रक्षा के निमित्त (सोमं पुनीतन) तुम अपने अन्दर आध्यात्मिक मादकता को अधिक से अधिक पवित्र बनाओ अथवा गहरी बनाओ

(अथा नः) जिससे वह प्राण प्यारा सखा सोम हमें (वस्यसः कृधि) अपनी दैवी सम्पदा से सम्पन्न बनादे ।

३०. मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्यो वारेष्वस्मयु ॥ ६।६।१

(सोम) हे दिव्य मादकता के सरसाने वाले प्रभो (वृषा) आप निरन्तर दान करने वाले हो दैवी सम्पदा की वर्षा करने वाले हो (देवयुः) दिव्य जनों के प्यारे हो (वारेषु अव्यः) जीवन संग्रामों में सदा हमारी रक्षा करने वाले हो (अस्मयुः) सदा हम पर अपना प्रेम और कृपा सरसाने वाले हो (मन्द्रया धारया पवस्व) अपनी दिव्य कल्याणकारिणी वाणी द्वारा हमें पवित्र कर दो । अपनी दिव्य आनन्द की धारा में हमें निमज्जित कर दो ।

३१. तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये ।
सुतं भराय सं सृजा ॥ ६।६।६

हे प्राणप्रिय प्रभो ! (तं वृषणं रसं) उस दिव्य प्रेम और बल से युक्त मानव को (देववीतये मदाय) श्रेयः मार्ग पर अथवा देवयान पर दृढ़ता से चलाने वाली आध्यात्मिक मादकता की प्राप्ति के निमित्त (गोभिः संसृज) अपनी दिव्य अन्तः प्रेरणा प्रदान करो (भराय सुतं संसृज) और जीवन का भार उठाने में पूर्ण समर्थ करो ।

३२. देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः ।
पयो यदस्य पीपयत् ॥ ६।६।७

(देवा) दिव्य गुणों से युक्त वह सोमदेव (सुतः) जब सम्यक् प्रकार से ध्यान योग द्वारा आत्मा में उसका मन्थन किया जाता है तब वह (धारया) अपनी दिव्य ज्ञान व तेज की धारा से (देवाय इन्द्राय पवते) दिव्यता की ओर प्रगति के हेतु जीवात्मा को पवित्र बना देता है (यद् अस्य) और जो इस जीवात्मा का (पयः) मानसिक व आत्मिक बल है (पीपयत्) उसकी विशेष रूप से वृद्धि करता है ।

३३. मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
इन्दो सखायमाविश ॥ ९।८।७

(इन्दो) हे परमैश्वर्यशाली भगवन् (नः मघोनः आ पवस्य) आप हमारे धन सम्पत्ति ऐश्वर्य को पवित्र करो अर्थात् हम सात्विक धनादि के उपार्जन करने वाले बन जांय (नः विश्वाः द्विषः अपजहि) प्रभो ! हमसे द्वेष करने वाले सब शत्रुजनों को दूर करो (सखायं आ विश) तथा निष्कपट भाव से हम से प्रीति करने वाले मित्रों को हमें प्राप्त कराओ ।

३४. पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् ।
सना मेधां सना स्वः ॥ ९।९।९

(पवमान) हे पवित्रकारक सोमदेव ! (महि श्रवः रासि) आप हम अपने उपासकों के जीवनों को यशस्वी बनाओ (वीरवत् गां अश्वं रासि) प्रचुर मात्रा में दूध देने वाली बलिष्ठ गौवों तथा शीघ्र-गामी अश्वादि यात्रा के साधनों को प्राप्त कराओ (मेधां सना) हमें मेधा बुद्धि से युक्त करके तथा (सना स्वः) अपने उपासकों को दिव्य आनन्द प्रदान करो।

३५. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवां इयक्षते ॥ ९।११।१

(नरः) मानव का कर्त्तव्य है कि वह (अस्मै इन्दवे पवमानाय) उस परमैश्वर्यशाली पवित्रताकारक दिव्यदेव की (उपगायत) उसके सामीप्य को प्राप्त होता हुआ स्तुति गान करे (देवान्) वह परम दयालु पिता ज्ञानी जनों का (अभिरक्षते) सब प्रकार से रक्षण करता है ।

३६. स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ९।११।३

(राजन्) हे परम प्रकाश स्वरूप प्रभो ! (सः नः पवस्व) आप हम सत्पथगामी अपने उपासकों की रक्षा करो (शं गवे) हमारे

गौ आदि पशु धन की रक्षा करो (शं अर्वते) हमारे यातायात के साधन अश्वादि की रक्षा करो (शं ओषधीभ्यः) हमारे अन्न शाक फल आदि ओषधियों की रक्षा करो (शं जनाय) हमारे पारिवारिक जनों तथा प्रजा की रक्षा करो।

३७. अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे।
देवेभ्यो अनुकामकृत्॥ ९।११।७

(सोम) हे आध्यात्मिक मद के सरसाने वाले महामद ! (विचर्षणिः) आप क्रान्तदर्शी हो सब हृदयों के संकल्प-विकल्पों को जाननेहारे हो (अमित्रहा) हमारे प्रति अकारण द्वेष करने वाले तथा हमें नानाविधि हानि पहुंचाने वाले दुष्टप्रकृति जनों का आप दमन करो (देवेभ्यः अनुकामकृत्) दिव्य गुणों से युक्त परोपकारी जनों की आप मनोकामना पूरी करने वाले हो (शं गवे) हमारी वसुन्धरा पर, हमारे राष्ट्र में सुख शान्ति का साम्राज्य विस्तृत करो।

३८. इन्द्राय सोम पातये मदाय परिषिच्यसे।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ९।११।८।

(सोम) जीवनाधार स्वामिन् ! (इन्द्राय) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त (पातये) आत्म रक्षा की सामर्थ्य के निमित्त तथा (मदाय) जीवन में दिव्य आध्यामिक मद को उत्पन्न करने के निमित्त (परिषिच्यसे) आप हमको सम्यक् प्रकार से अभिषिक्त करने वाले हो (मनः चित्) आप तो सबों के जानने वाले हो तथा (मनसः पतिः) सब के मनों के स्वामी हो अथवा विश्वमानस पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाले हो।

३९. पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः।
इन्दविन्द्रेण नो युजा॥ ९।११।९

(पवमान सोम) अपनी अनुकम्पा से हमारे अन्तस्तल को पवित्र करने वाले, हमारे जीवन में आध्यात्मिक मस्ती को उत्पन्न करने वाले प्रभो ! (नः सुवीर्यं रिरीहि) हमें उत्तम बल वीर्य से युक्त करो (नः रयिं रिरीहि) हमें उत्तम धन सम्पदा से युक्त करो (इन्दो)

हे प्रकाश स्वरूप प्रभो। (नः इन्द्रेण युजा) हमें दिव्य ऐश्वर्य से युक्त कर दो।

४०. अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ९।१२।२

(गावः मातरः वत्सं न) जिस प्रकार गौ माताएँ अपने बच्चों को प्रेम करती हैं (विप्रा इन्द्रं अभि अनूषत) अपने क्रियात्मक आचरण द्वारा धर्म तत्व का बोध कराने वाले ज्ञानी मानव उस परमैश्वर्य-शाली प्रभु की स्तुतिगान द्वारा सम्यक् प्रकार से भक्ति करते हैं। (सोमस्य पीतये) और आध्यात्मिक मद का पान करते हैं।

४१. आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम्।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९।१२।७

(पवमान इन्दो) हे जीवन को पवित्र बनाने वाले प्रकाशस्वरूप प्रभो! (अस्मे) हम अपने उपासकों को (सहस्रवर्चसं रयिं) अतुलित सात्विक बल विक्रम को बढ़ाने वाली सम्पदा को (आधा-रय) सम्यक् प्रकार से प्राप्त कराओ (सु भुवं आ धारय) तथा पृथ्वि का उत्तम राज्य हमें प्रदान करो।

४२. प्रत्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत।
महे भराय कारिणः ॥ ९।१६।५

(इन्द्र) हे दिव्य ऐश्वर्य के परम आगार पावन प्रभो! (सोमाः इन्दवः कारिणः) आध्यात्मिक मादकता से युक्त शक्तिशाली कर्मयोगी मानव (महे भराय) निरन्तर अपने संरक्षण के लिये (त्वा) आपको (नमोभिः) श्रद्धा समन्वित स्तवन व वन्दन द्वारा (प्र असृक्षत) विशेष रूप से प्राप्त होते हैं, भक्ति भाव पूर्वक आपकी शरण ग्रहण करते हैं।

४३. पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभिश्रियः।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ९।१६।६

(शूर: गोषु न तिष्ठति) जिस प्रकार नाना संकटों को सहर्ष सहन करने वाला वीर राष्ट्र-भक्त सैनिक अपनी मातृभूमि वा राष्ट्र की रक्षा में सन्नद्ध होता है उसी प्रकार (पुनान:) आत्म शुद्धि करने वाला मानव (विश्वा श्रिय:) नाना धन सम्पदा राज्य सुख भोग पदवी प्रतिष्ठा को (अभि अर्षन्) चहुँ ओर से प्राप्त करता हुवा भी तत्वज्ञ मानव अभिमान शून्य हो (अव्यये रूपे तिष्ठति) तुझ अजर अमर अविनाशी के दिव्य आनन्द रूप का दर्शन करने के लिये प्रयत्न शील रहता है अर्थात् निज जीवन में अधिक से अधिक विनम्र बन तेरी उपासना से विमुख नहीं होता। संसार की कोई भी सम्पदा उसे श्रेय: पथ से च्युत नहीं होने देती।

४४. मधो धीरामनुक्षर तीव्र: सधस्थमासद: ।
चारुर्ऋताय पीतये ॥ ९।१७।८

(ऋताय पीतये) सत्य स्वरूप दिव्य आनन्द रस के पान करने के लिये (तीव्र: चारू:) अत्यन्त तेजवान् व शोभनीय परम पुरुष (सधस्थं आसद:) अखिल ब्रह्माण्ड में रमण करने वाला मानव की हृदय रूपी गुफा में विशेष रूप से विराजमान (मधो: धारां) दिव्य माधुर्य की पवित्र धारा की (अनुक्षर) वर्षा करता है।

४५. तव विश्वे सजोषसो देवास: पीतिमाशत ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ९।१८।३

(मदेषु सर्वधा असि) हे पावन आनन्द घन प्रभो! आप तो दिव्य आनन्द रसों के सब प्रकार से धारण करने वाले हो (विश्वे सजोषस: देवास:) संसार के सब भक्ति भाव से वन्दन करने वाले ज्ञानी जन (तव पीतिं आशत) तेरे दिव्य प्रेम रस का पान करते हैं।

४६. यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु: ।
तन्न: पुनान आ भर ॥ ९।१९।१

(पुनान सोम) मानव जीवन को पवित्रता की ओर ले जाने वाले दिव्य मादकता के सरोवर प्रभो! (यत् चित्रं) जो कुछ भी नाना प्रकार का (उक्थ्यं दिव्यं) प्रशंसित तथा दिव्य (पार्थिवं वसु:) पृथिवी तल का सुख भोग वा ऐश्वर्य है (तत् न: आभर) वह हमें

प्राप्त कराओ। दिव्यता अर्थात् सात्विकता शून्य आसुरी वैभव से हम सदा दूर रहें।

४७. पवस्व वृत्रहन्तमोऽक्थेभिरनुमाद्यः।
शुचि पावको अद्भुतः ।। ६।२४।६

(वृत्रहन्तम) हे दुःख दारिद्र्य का सर्वथा विनाश करने वाले तथा काम क्रोधादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराने हारे परमात्मन् (अनुमाद्यः) आप तो भक्ति भाव पूर्वक ज्ञान पूर्वक गान किये गये वैदिक स्तोत्रों द्वारा हमारे जीवन में आध्यात्मिक मादकता को उत्पन्न करने वाले हो (शुचिः) शुचिता के परम आगार हो (पावकः) तथा हमारे जीवन को पवित्र बनाने वाले (अद्भुतः) अद्भुत और अपार महिमा वाले हो।

४८. विश्वा रूपण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः।
यत्रामृतास आसते ।। ६।२५।४

हे परम पावन प्यारे सोम, आप की महती अनुकम्पा से यह जीवात्मा (विश्वा रूपाणि आविशन्) नाना योनियों में विचरण करता हुआ (हर्यतः) कर्मफल भोगों को भुगतता हुआ मानव योनि को प्राप्त कर अपनी पाप-वृत्तियों का संहार करता हुआ दिव्य कान्ति से युक्त हो (पुनानः) अपने को पवित्र बनाता हुआ (यत्र अमृतासः आस्ते याति) उस दिव्य मोक्ष धाम को प्राप्त करने में समर्थ होता है जहाँ मुक्त आत्मा निवास करते हैं।

४६. आपवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ।। ६।२५।६

(मदिन्तम कवे) हे दिव्य मादकता के परम निधान क्रान्तदर्शी प्रभो ! (पवित्रं धारया आपवस्व) अपनी दिव्य ज्ञान व अमृत रस की पवित्र धारा से मुझे पवित्र कर दो (अर्कस्य योनिं आसदम्) और दिव्य प्रकाश व दिव्य आनन्द के परम धाम को मुझे प्राप्त करा दो।

५०. तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम्।
इन्दविन्द्राय मत्सरम् ।। ६।२६।६

(इन्दो) हे अत्यन्त पवित्रताकारक परमैश्वर्यशाली प्रभो! (तं त्वा गिरावृधं) वैदिक स्तवनों द्वारा मानव के हृदय में जिस तेरी दिव्य ज्योति का वर्धन होता है ऐसे तुझ उपास्य देव की (वेधस:) ज्ञानी मानव (हिन्वन्ति) वन्दना करते हैं (इन्द्राय) और दिव्य आनन्द की प्राप्ति के निमित्त (मत्सरम्) अपने अन्दर दिव्य मादकता को उत्पन्न करते हैं।

५१. एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्य: सुत: ।
विश्वा धामान्याविशन् ॥ ९।२८।२

(देवेभ्य: सुत:) दिव्य गुण सम्पन्न भक्त योगी जनों द्वारा निष्पन्न अर्थात् प्रत्यक्ष किया जाने वाला (एष: सोम:) यह दिव्य आनन्द रस (विश्वा धामानि आविशन्) सर्व लोक लोकान्तरों में समाया हुवा है सच्चिदानन्द स्वरूप सर्व व्यापक परमात्म देव का स्वाभाविक गुणरूप यह आनन्द निश्चय सर्वत्र विद्यमान रहता है किन्तु (पवित्रे अक्षरत) इसका साक्षात् करना आत्मा में ही लक्षित होता है।

५२. विश्वा वसूनि सञ्जन्यवस्व सोम धारया ।
इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥ ९।२९।४

(सोम) हे जीवनाधार प्राणनाथ प्रभो! (विश्वा वसूनि संजयन्) समस्त लोक लोकान्तरों पर नियन्त्रण रखता हुआ असंख्य मानव, पशु आदि योनियों का नियमन करता हुआ विश्व की सकल विभूतियों पर आधिपत्य रखता हुआ (इनु द्वेषांसि सध्र्यक्) मानव के हृदय की द्वेष भावनाओं एवं पापवृत्तियों का अपने मन से शमन करता हुआ (धारया पवस्व) अपने दिव्यज्ञान व अमृतरस की पवित्र धारा द्वारा हमें उपकृत कर।

५३. आ न: पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् ।
यया ज्योतिर्विदासि न: ॥ ९।३५।१

(पवमान) हे परम पवित्रताकारक दिव्य देव! (यया धारया) जिस ज्ञान की दिव्य धारा द्वारा (न: ज्योति: विदासि) तू हमें दिव्य प्रकाश प्राप्त कराता है (न: आपवस्व धारया) उसी दिव्य धारा द्वारा

हमारे जीवन को पवित्र बना। तथा (पृथुं रयिं) विपुल ऐश्वर्य को (विदासि) हमें प्राप्त करा। वह ऐश्वर्य जिसे पाकर हम जीवन में दिव्यता की ओर प्रगति करने लगें।

५४. स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति।
अभिकोशं मधुश्चुतम्॥ ९।३६।२

(सोम) दिव्य आनन्द के दाता प्राणनाथ प्रभो! (सः देववीः वह्निः) तुम तो दिव्य प्रकाश से युक्त वह अग्नि हो (अति जागृविः) जो निरन्तर अत्यन्त प्रज्वलित व प्रदीप्त रहती है (अभि पवस्व कोशं) तुम हमारे आनन्दमय कोष को सर्वथा पवित्र कर दो (मधुश्चुतं) जहां दिव्य आनन्द का झरना झरता है।

५५. शतं न इन्द्र ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम्।
पवस्व मंहयद्रयिः॥ ९।५२।५

(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवान् पतित पावन सोमदेव! (शतं सहस्रं वा शुचीनां ऊतिभिः) आप अपनी सैंकड़ों हजारों पवित्र संरक्षण शक्तियों द्वारा (नः पवस्व) हमारे जीवन की रक्षा करते हुए उसे पवित्र बना दो (मंहयद् रयिः) तथा हमें दिव्य ऐश्वर्य से युक्त कर दो।

५६. अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि।
सोमो देवो न सूर्य्यः॥ ९।५४।३

(अयं सोमः देवः) यह दिव्य गुणों और शक्तियों का भण्डार परम पावन प्रभु (विश्वानि भुवनोपरि तिष्ठति) असंख्य लोक लोकान्तरों के बाहर और भीतर अचलरूप से प्रतिष्ठित है और (सूर्य्यः न पुनानः) जिस प्रकार यह भौतिक सूर्य अपने तेज प्रकाश से लोकों को पवित्र और प्रकाशयुक्त करता है इसी प्रकार आप अपने दिव्य आध्यात्मिक तेज व प्रकाश से हमारी आत्मा के अज्ञानान्धकार को विदीर्ण कर अपने दिव्य प्रकाश से उसे चमत्कृत कर दो।

५७. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।
तरत्स मन्दी धावति॥ ९।५८।१

(सुतस्य अन्धसः धारा धावति) ध्यान योग द्वारा प्रकाश में आने वाली उस दिव्य देवके पावन तेजकी धारा सर्वत्र प्रवाहित है(सः मन्दी) वह जो सच्चे हृदय से परमात्मा की स्तुति अर्थात् गुणगान करता है और गान करते-करते दिव्य मद (सरुरे वहदानियत) से सरावोर हो जाता है (तरत्) वह उसको तर जाता है (तरत्स मन्दी धावति) निश्चय वह प्रभु का प्यारा भक्त इस धारा को पारकर दिव्य आनन्द को प्राप्त हो जाता है।

५८. त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरितातर।
कविः सीद नि बर्हिषिः॥ ९।५९।३

(सोम) हे प्यारे जीवनाधार प्रभो! (त्वं पवमानः) तू तो निश्चय हमें पवित्र करने वाला है (विश्वानि दुरिता तर) तू अपनी कृपा से हमारे सब दुर्गुणों, पाप वासनाओं को दूर कर दे (कविः) तू तो महा क्रान्तदर्शी है। घट घट के भेद को जानने वाला है (बर्हिषि निसीद) हमने अपने मन मन्दिर में जो ज्ञानादि की वेदी रची है उसमें तू प्यारे सोम विशेष रूप से विराजमान हो।

५९. पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान्।
इन्दो विश्वा अभीदसि॥ ९।५९।४

(पवमान इन्दो) हे परमैश्वर्यशाली समस्त विश्व के रक्षक प्रभो! (विश्वां इत् अभि असि) तू सारे विश्व में रमा हुआ है (स्वः विदः जायमानः) जब तेरा उपासक अपने स्वाभाविक नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन स्वरूप को जान लेता है तथा साधना द्वारा अपने अन्दर रमण करने वाले महान् चेतन तत्व परम ब्रह्म की अनुभूति कर लेता है तो वह निश्चय (महान् अभवः) महान् बन जाता है। अपने जीवन में दिव्यता (Divineness) उपलब्ध कर लेता है।

६०. प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षिणम्।
इन्दुं सहस्र चक्षसम्॥ ९।६०।१

(पवमानं इन्दुं) विश्व में पवित्रता का सञ्चार करने वाले महान् तेज स्वरूप ऐश्वर्यशाली प्रभु का जो (विचर्षिणम्) महान् ज्ञानी व

अन्तर्द्रष्टा है (सहस्र चक्षसम्) अनन्त नेत्रों वाला है अर्थात् अद्भुत दर्शन शक्ति सम्पन्न है उसका (गायत्रेण प्रगायत) गायत्री छन्द वाली ऋचाओं द्वारा तन्मय होकर गान करो अथवा ज्ञान के पावन स्तोत्रों द्वारा जिनके गान करने से मानव पवित्र बन जाता है भक्ति समन्वित हो, उस प्यारे प्राणनाथ प्रभु का गुणगान करो।

६१. ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया।
तेभि र्नः सोम मृळय ॥ ९।६१।५

(सोम) हे परम पावन जीवन धन ! (ये ते धारया ऊर्मय:) आप की ज्योति: व ज्ञान की अजस्र धाराओं से जो लहरें (अभिक्षरन्ति) व्रह्माण्ड में सब ओर प्रवाहित हैं (तेभि: न: मृळय) उनसे हमें आनन्दित करो। इन ज्ञान और तेज की धाराओं में अवगाहन करके हम शुद्ध और पवित्र बन जीवन में दिव्य आनन्द को प्राप्त करने वाले बन जायें।

६२. यस्ते मदो वरेण्यस्तेनापवस्वान्धसा।
देवावीरघशंसहा ॥ ९।६१।१९

(य: ते वरेण्य: मद:) हे प्राणनाथ प्रभो ! आपको जो वरण करने योग्य आध्यात्मिक मद अर्थात् सरूर है (तेन आपवस्व अन्धस:) उस भक्ति योग द्वारा सिद्ध मद से हमें पवित्र कर दो। (देववी:) प्रभो ! आप तो अपने ज्ञानी भक्त जनों पर सदा कृपा करने वाले हो और (अघ-शंसहा) पाप वासनाओं में रमण करने वाली वृत्तियों का क्षय करने वाले हो।

६३. सुवीरासो वयंधना जयेम सोम मीळव:।
पुनानो वर्ध नो गिर: ॥ ९।६१।२३

(सोम) हे परम पावन प्रभो ! (मीळव: पुनान:) आप दिव्य बल-वीर्य विक्रम के निधान हो तथा हमको पवित्र करने वाले हो (वयं सुवीरास:) हमने तप संयम द्वारा महान् शारीरिक एवं आत्मिक बल का अपने अन्दर सञ्चय किया है (धना जयेम) हम अपने जीवन में दिव्य धन स्वरूप आप को जय करें अर्थात् इस धन प्राप्त करने के हम पात्र

बन जावें (वर्ध नः गिरः) प्रभो ! आप हमारी वाणी का संवर्धन करो अर्थात् हम दिव्य भक्ति स्तोत्रों का पाठ करने वाले बन जायें ।

६४. यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।

ताभिः पवित्रमासदः ॥ ९।६२।७

(इन्दो) जीवन में सच्चा आह्लाद उत्पन्न करने वाले परमात्मन् ! (ऊतये) मानव के कल्याण के लिये (याः) जो (ते) तेरी (मधुश्चुतः धाराः) दिव्य मादकता का क्षरण करने वाली धारायें हैं (ताभिः) इन से (पवित्रं आसदः) हमारे जीवन में पवित्रता का सञ्चार करो अथवा हमारी पवित्र हृदय वेदी पर भली भांति विराजमान हो ।

६५. इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।

अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ९।६३।५

(अप्तुरः) हे सोमदेव आपकी कृपा से हम लोग जीवन में अपने लक्ष्य को वेधने वाले बनें (इन्द्रं वर्धन्तः) तथा निज आध्यात्मिक विभूतियों का संवर्धन करते हुए (अपघ्नन्तः अराव्णः) और दुष्ट दुर्गुणों का नाश करते हुए तामसिक प्रवृत्तियों का संहार करते हुए अथवा कदर्य कामचोर प्रमादी दस्यु जनों का नियन्त्रण करते हुए (विश्वं) सारे विश्व को (आर्यंकृण्वन्तः) श्रेष्ठ सज्जनता युक्त बनावें संसार में आर्यत्व का विस्तार करने वाले बनें ।

६६. अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् ।

द्युमन्तं शुष्ममुत्तरम् ॥ ९।६३।२९

(सोम) हे प्राणप्रिय पतित पावन प्रभो ! (रक्षसः अपघ्नन्) दुष्ट दुर्जनों का नाश करते हुए (कनिक्रदत्) उनको कठोर दण्ड देते हुए (द्युमन्तं उत्तरं शुष्मम्) अत्यन्त तेजोमय दिव्य बल को (अभ्यर्ष) हमें प्रदान करो । हम आपके दैवी बल को प्राप्त कर संसार से दुष्टता मिटाने में सक्षम बन जावें ।

६७. अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा ।

इन्दो विश्वानि वार्या ॥ ९।६३।३०

(सोम इन्दो) दिव्य शान्ति और आनन्द के दातार प्रभो ! (अस्मे) हम अपने उपासकों को (दिव्यानि पार्थिवा) पृथिवी से लेकर द्यौ पर्यन्त अथवा सब दिव्य पार्थिव वार्या (वसूनि धारय) श्रेष्ठ सम्पदाओं को प्राप्त कराओ अथवा आपकी कृपा से हम सब श्रेष्ठ विभूतियों को धारण करने वाले बन जायें।

६८: इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।

इन्दो रुचाभिगा इहि ॥ ९।६४।१३

(इन्दो) हे दिव्य ऐश्वर्य के परम भण्डार स्वामिन् ! (मनीषिभिः मृज्यमानः) तू तो मननशील ज्ञानी साधकों द्वारा हृदय की गंभीर गुफा में खोजा जाने वाला है (धारया) तू अपनी अविरल ज्ञान की धारा से (इषेपिन्वस्व) उन्हें दिव्य ऐश्वर्य प्रदान कर (रुचागा अभि इहि) अपने दिव्य तेज वा कान्ति से उनकी वाणियों को प्रकाशित कर दिव्य प्रकाश से संयुक्त कर।

६९. वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।

पवमान स्वाध्यः ॥ ९।६५।४

(पवमान) हमारे जीवन में पवित्रता का सञ्चार करने वाले प्यारे सोम (भानुना) अपने पवित्र तेज के कारण (वृषा हि असि) निश्चय तू अत्यन्त बलवान् है और हमें त्रिविध बलों से संयुक्त करने वाला है (स्वाध्याः) हम आत्मचिन्तन करने वाले अपने तात्विक स्वरूप का अवशोध करने वाले (त्वा द्युमन्तं हवामहे) दिव्य आत्मिक प्रकाश से देदीप्यमान तुझको श्रद्धा समन्वित हो ध्याते हैं।

७०. तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।

सखित्वमावृणीमहे ॥ ९।६५।५

(वयं वाजिनः) तेरी उपासना द्वारा हम दिव्य बलों से संयुक्त होकर (तस्य ते विश्वा धामानि जिग्युषः) तेरे विपुल ज्ञानधन को जीतना चाहते हैं अर्थात् तेरे चिरन्तन ज्ञानधन को अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहते हैं (सखित्वं आवृणीमहे) और तेरी मित्रता का हम अन्तस्तल से वरण करते हैं।

७१. आ ते दक्षं मयोभुवं बह्निमद्यारणीमहे ।
पान्तमा पुरूस्पृहम् ॥ ६।६५।२८

(ते पुरुस्पृहं) हे प्राणाधार प्रभो ! विश्व मानव द्वारा कमनीय तेरे (आ पान्तं) सब भाँति रक्षा करने वाले (मयोभुवं) दिव्य आनन्द के देने वाले (दक्षं वह्निं) दिव्य पवित्रता के देने वाले तेरे भर्ग का तेरे दिव्य तेज का (अद्य वृणीमहे) हम अपने इस जीवन में सम्यक् प्रकार से वरण करते हैं।

७२. आमन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।
पान्तमा पुरूस्पृहम् ॥ ६।६५।३०

(आ मन्द्रं) संसार के समस्त मानवों में आन्तरिक उल्लास को उत्पन्न करने वाले (आ मनीषिणं) सब के मनोभावों को जानने वाले (आ विप्रं) दिव्य ज्ञान का सम्यक् प्रकार से सञ्चार करने वाले (आ वरेण्यं) सब के भजनीय अत्यन्त सुन्दर व कमनीय (आ पान्तं) सब ओर से रक्षा करने वाले (पुरूस्पृहं) विश्ववन्द्य (वह्निं अथ आवृणीमहे) श्रेय पथ पर सबको प्रगति करने की प्रेरणा देने वाले परमात्मदेव का हम निश्चय अपने जीवन में सम्यक् प्रकार से वरण करेंगे।

७३. आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
पान्तमा पुरूस्पृहम् ॥ ६।६५।३१

(सुक्रतो) अत्यन्त आश्चर्यमय दिव्य कर्मों के करने वाले प्रभो ! (आ रयिं) सब भाँति दिव्य ऐश्वर्य रूपी धन (आ सुचेतुनं) सम्यक् प्रकार से दिव्य चेतना प्रदान करने वाले प्यारे प्रभु का (आ पान्तं) सब भाँति की रक्षा करने वाले (आ पुरूस्पृहं) निश्चय विश्व-वन्द्य देवाधिदेव का (आ तनूषु) निश्चय अपने इसी मानव चोले में दृढ़ संकल्प पूर्वक वरण करते हैं।

७४. पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या ।
सखा सखीभ्य ईड्यः ॥ ६।६६।१

(सखिभ्यः) समान ख्याति वाले अर्थात् बहुत अंशों में समान गुणों

से युक्त अपने भक्त मानवों का (सखा) तू मित्र है मृत्यु वा पतन से उनको बचाने वाला है (ईड्य:) तू हीं एक मात्र उपासनीय है (विश्व चर्षणे) हे समस्त संसार पर दृष्टि रखने वाले दिव्य देव (विश्वानि-काव्या) सब प्रकार के सत् ज्ञान से हमें युक्त करो सम्यक् प्रकार से हमारा जीवन पवित्र कर दो।

७५. तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वितन्वते ।
पवित्रं सोम धामभिः ।। ६।६६।५

(सोम) हे दिव्य मस्ती के सागर सोम ! (दिव: पृष्ठे) दिव्य साधनाओं से परिपूत मानव हृदय में (तव) आपकी (शुक्रास: अर्चय:) अत्यन्त आभामयी दिव्य प्रकाश की किरणें (पवित्र धामभि:) तेरे पवित्र आनन्द धाम से विस्तृत किरणें (वितन्वते) व्याप जाती हैं।

७६. तवेमे सप्त सिन्धवः प्राशीषं सोम सिस्रते ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ।। ६।६६।६

(सोम) हे मानव जीवन में आध्यात्मिक मद के सरसाने वाले प्रभो ! (इमे सप्त सिन्धव:) पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ तथा प्राण अपान रूपी सात नदियाँ (तव प्राशीषं) तेरी महिमा रूपी जलधाराओं को (सिस्रते) वहन करती हैं। यौगिक साधना रत अन्तर्मुखी मानव की यह (धेनव:) इन्द्रिय रूपी गौवें (तुभ्यं धावन्ति) निश्चय तेरी ओर ही दौड़ लगाती हैं।

७७. प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः ।
दधानो अक्षितिश्रवः ।। ६।६६।७

(सोम) हे आध्यात्मिक मद के दिव्य सरोवर ! (प्रसुत: मत्सर:) तू तो निश्चय ही ध्यानयोग में रत मानव के हृदय में विशेष रूप से निष्पन्न होने वाला है (इन्द्राय) अपने इस प्रवुद्ध उपासक के मनमन्दिर में (धारया याहि) प्रवल जल धार के रूप में बरस (अक्षितिश्रव: दधान:) और उसे शाश्वत कभी क्षय न होने वाले वैभव को प्रदान कर।

७८. पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जंघनत् ।। ६।६६।२४

(पवमान) हे दिव्य शुचिता प्रदान करने वाले प्यारे सोम ! तू तो (ऋतं) ऋत ज्ञान की (शुक्रं) दिव्य तेजोमय (बृहत् ज्योतिः) महती ज्योति को (अजीजनत्) उत्पन्न करने वाला है (कृष्णा तमांसि जंघनत्) और कलुषित अज्ञानान्धकार को विदीर्ण करने वाला है।

७९. प्रप्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः।
देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ ९।६७।२८

(सोम) हे जीवनाधार प्राणनाथ प्रभो ! (विश्वाभिः अंशुभिः) अपनी दिव्य ज्योति की सर्व किरणों द्वारा (प्रप्यायस्व) हम अपने उपासकों को आप्लावित कर दो (प्रस्यन्दस्व) उनके दिव्य अमृतरूपी जलों की हम पर वर्षा कर दो (दिवेभ्यः उत्तमं हविः) निश्चय साधना रत ज्ञानी जनों की यह हो श्रेष्ठतम हवि है जिसको वह अपने जीवन में धारण करते हैं।

८०. सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि। बृहस्पते रवथेना विदिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यथुः ॥ ९।८०।१

(नृचक्षसः सोमस्य धारा) सब प्राणियों पर कृपा की दृष्टि रखने वाले उस दिव्य देव के ज्ञान की धारा (देवान् पवते) ज्ञानी साधकों के जीवन को पवित्र बनाती है (ऋतेन हवते दिवस्परि) और उनको ऋत-ज्ञान से युक्तकर जीवन में दिव्यता प्रदान करती है (बृहस्पतेः रवथेन आ वि दिद्युते) और उस विश्व रक्षक प्रभु के तेज से उनको चमत्कृत करती है (समुद्रासः न) महान् गहन गम्भीर सागरों की भाँति यह ज्ञानी जन (सवनानि विव्यथुः) उस पावन प्रभु के दिव्य उपदेशों व आदेशों का विश्व में प्रचार का प्रकाश करते हैं।

८१. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ ९।८३।१

(ब्रह्मणस्पते) हे वेद ज्ञान के स्वामिन् (ते पवित्रं विततं) तेरा

पवित्र तेज सारे ब्रह्माण्ड में व्याप रहा है (प्रभुः) तू तो सब का स्वामी है (विश्वनः गात्राणि पर्येषि) तू विश्व के समस्त प्राणियों के शरीरों में रमा हुआ है (अतप्ततनूः आमः) जिस मानव नेअपने शरीर को ब्रह्मचर्य की अग्नि में नहीं तपाया है और उसको कच्चा अर्थात् निर्बल बनाया हुआ है (तत् न आसः) वह तुझको नहीं प्राप्त कर सकता (शृतासः) और जिन्होंने तप में तपा कर उसको निर्मल और बलिष्ठ बना लिया है (इत वहन्तः) और जो निरन्तर प्रगतिशील रहते हैं (तत् समाशत) वह निश्चय उस तुझको पाते हैं।

८२. पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे। कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्ति यदुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥९।८४।१

(इन्द्राय वरुणाय वायवे) उस परम ऐश्वर्य के भण्डार ज्ञान व ज्ञान के केन्द्र श्रेष्ठतम पावन प्रभु की प्राप्ति के निमित्त (विचर्षणिः देवमादनः) दिव्य गुणों का धारण करने वाले ज्ञानी मानव को (अप्सा पवस्व) श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान द्वारा अपने को पवित्र बनाना चाहिये। हे संसार के मानवो (अद्य नः वरिवः) शीघ्रातिशीघ्र अपने को श्रेष्ठ जीवन वाला (स्वस्तिमत् कृधि) तथा कल्याण मय बनाओ (क्षितौ दैव्यं जनं गृणीहि) इस पृथिवी मण्डल में दिव्य गुणों की उपासना करने वाले जनों को पवित्र आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश दो।

८३. यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः परिकोशमर्षति याति निष्कृतम्। सहस्रधारः परिकोशमर्षतिवृषा पवित्रमत्येति रोरूषत् ॥ ९।८६।७

(यज्ञस्य केतुः स्वध्वरः) यज्ञरूप पतित पावन प्रभु, दिव्य कर्मों का प्रबोध कराने वाला केतु अर्थात् ध्वजवत् है (देवान पवते) वह ज्ञानी जनों के जीवनों को पवित्र बनाता और (उपेयाति निष्कृतम्) उनके निष्काम कर्मों के अनुष्ठान को प्राप्त होता अर्थात् अपनी दिव्य ज्योति से उनको उपकृत करता है (सहस्रधारः) वह अनन्त ज्ञान की धाराओं वाला है (परिकोशं एति) उन ज्ञानी जनों के आनन्दमय कोष को

प्रबुद्ध करता है (वृषा) वह दिव्य आनन्द वारि की वर्षा करने वाला मेघ है (रोरुवत् पवित्रम् अति एति) मानवों की पाप वासनाओं का क्षय करता हुआ उन पर आनन्द की वर्षा करता है।

८४. ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभावसुः। दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः॥ ६।८६।१०

(यज्ञस्य ज्योतिः) उस पूजनीय परमात्मदेव की दिव्य ज्योतिः (मधु प्रियं) अत्यन्त माधुर्य युक्त और प्यारी है (देवानां पिता) वह तो दिव्य गुणों की सदा रक्षा करने वाली है (जनिता विभावसुः) नाना सुखों तथा ऐश्वर्यों के देने वाली है (पवते) निश्चय वह हमें पवित्र करने वाली है (स्वधयो) ज्ञान तथा तेज के धारण करने वाली (अपीच्यरत्नं दधाति) दिव्य रत्न धन को जो हृदय-मन्दिर में छिपा हुआ है धारण कराती है वह रत्न धन (मत्सरः) पूर्ण आप्त काम है (रसः) मानव जीवन का सार है तथा (मदिन्तमः) दिव्य मादकता का सागर है।

८५. त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनुविप्रासो अमदन्नवस्यवः। त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम्॥ ६।८६।२४

(सोम) हे जीवन के आधार प्रभो! (त्वां पवमानं) अत्यन्त पवित्रता कारक तुझ दिव्य देव को (स्वाध्यः विप्रासः) आत्म चिन्तन करने वाले ध्यानयोग में रत ज्ञानी जन (अवस्यवः) जो तेरे दिव्य ज्ञान की तेरे संरक्षण तथा तेरी कृपा की चाहना करते हैं (अनु अमदन्) और साधना द्वारा उन्हें उपलब्ध करते हैं (सुपर्ण दिवस्परि इन्दो) हे दिव्य पालना शक्तिवाले आकाशवत् व्यापक परम ऐश्वर्य के भण्डार प्रभो! (विश्वाभिः मतिभिः) सब प्रकार की मेधा ज्योतिष्मती ऋतंभरा बुद्धियों द्वारा (परिष्कृतं) आपके पवित्रतम आनन्द स्वरूप को क्रमशः अपने अन्दर निखारते हुए (त्वाम् आभरत्) आपको अपने अन्दर धारण करते हैं।

८६. त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ।।

९।१००।३

(सोम) हे जीवनाधार स्वामिन् ! (त्वं मनोयुजं धियं सृज) तुम मानसिक साधना द्वारा संसिद्ध बुद्धि को हमारे लिए सृजन करो (तन्यतुः वृष्टिं न) जिस प्रकार प्यारे गर्जन करता हुआ मेघ वृष्टि को करता है उसी प्रकार (त्वं) तुम (पार्थिवा दिव्या च वसूनि) पार्थिव और दैवी सम्पदाओं को हमारे लिए (आ पुष्यसि) परिपुष्ट करते हो ।

८७. पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ।।९।१००।६

(सोम) हे परम रक्षक प्रभो ! तुम तो (वाजसातमः) अत्यन्त बलयुक्त और (मधुमत्तमः) दिव्य माधुर्य युक्त हो (धारया सुतः) धारणा शक्ति के योग से मुक्त मानव द्वारा स्तुत हुए तुम (पवित्रे विष्णवे इन्द्राय) पवित्र जीवन वाले और अपने तेज से इस शरीर रूपी पिण्ड में व्यापने वाले शक्ति के पुञ्ज मुक्त जीवात्मा की तथा (देवेभ्यः पवस्व) संसार के सब ज्ञानी सुकर्माजनों की रक्षा करो अथवा मेरी मन बुद्धि आदि इन्द्रियों को दिव्यता प्रदान करो ।

८८. अयं पूषा रयिर्भगः सोमा पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ।।९।१०१।७

(अयं सोम) यह जीवनाधार सोम (पूषा) हमारा पालनहार है हमें पुष्टि के देने वाला है (रयिः) हमारा जीवन धन है (भगः) परम ऐश्वर्यशाली है (पुनानः अर्षति) पवित्र आत्माओं को प्राप्त होने वाला है (भूमनः विश्वस्य पतिः) उस व्यापक विश्व का पति है (उभे रोदसी व्यख्यत्) उसी ने पार्थिव और द्यौ दोनों प्रकार के लोकों को रचा है ।

८९. सोमा पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ।।

९।१०१।१०

(इन्दवः) तेजस्वी (गातुवित्तमाः) वेद ज्ञान के धनी (मित्राः) सदा सुपथ का बोध कराने वाले (सुवानाः) कर्त्तव्यनिष्ठ दक्षता युक्त (अरेपसः) चरित्रवान् (स्वाध्यः) स्वाध्यायशील आत्म-चिन्तन-रत (स्वर्विदः) आनन्द स्वरूप ब्रह्म के ज्ञाता (सोमाः) आध्यात्मिक मद से युक्त मानव (अस्मभ्यं पवन्त) सदा हमारे जीवन को पवित्र बनाने वाले होवें।

६०. अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः ।

स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ६।१०२।५

(जुषन्त यत्) जिस परम ब्रह्म की सदा उपासना करते (अस्य व्रते) और जिसके आदेशों के अनुकूल सदा आचरण करते (विश्वे देवासः) ऐसे संसार के सब ज्ञानी जन (अद्रुहः सजोषसः) निर्वैर होकर सदा प्रीति युक्त रहते सदा (स्पार्हाः) एक दूसरे को शुभकर्मों में सह-योग देते वह (रन्तयः भवन्ति) सदा प्रसन्न और पूर्ण सुखमय जीवन-यापन करते हैं।

६१. सखाय आ निषीदत पुनानाय प्रगायत ।

शिशुं न यज्ञैः परिभूषत श्रिये ॥ ६।१०४।१

(सखायः) प्यारे मित्रो आओ (आ निषीदत) और भली प्रकार से उस प्राणप्रिय सखा के पास बैठो अर्थात् उसकी उपासना में रत होवो (शिशुं न) स्वच्छ पवित्र निष्पाप बालक के समान बनकर (पुनानाय प्रगायत) जीवनों को पवित्र करने वाले प्यारे मीत का अत्यन्त श्रद्धा के साथ गुणगान करो और (श्रिये) दिव्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त (यज्ञैः परिभूषत) उसको अपने श्रेष्ठतम निष्काम कर्मों के द्वारा प्रसन्न करो।

६२. अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।

अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ६।१०५।३

(अयं) यह हमारा प्राण प्यारा उपास्य देव (शर्धाय साधनः) जीवन में सहनशीलता प्रदान करने वाला (वीतये साधनः) जीवन में प्रगति का दाता (दक्षाय साधनः) और दक्षता को उत्पन्न करने वाला

है (अयं सुतः) जब ध्यान योग द्वारा आत्मा के अन्दर इसकी दिव्य ज्योतिः का साक्षात् हो जाता है तो (अयं देवेभ्यः मधुमत्तमः) यह निश्चय दिव्य गुण युक्त उपासकों के जीवन में दिव्य माधुर्य एवं मादकता उत्पन्न कर देता है।

९३. ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन् सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ९।११३।४

(ऋतद्युम्न) हे सत्य धन और कीर्ति की सदा कामना करने वाले मानव तू (ऋतं वदन्) अपने जीवन में सनातन दिव्य नियमों का अनुष्ठान करते हुए (सत्यकर्मन्) और निरन्तर सत्कर्मों में रत रहते हुए (सत्यं वदन्) और सत्य ज्ञान का नित्य प्रवचन करते हुए (श्रद्धां वदन्) और उसमें अनन्य प्रीति को उत्पन्न करने की प्रेरणा देते हुए (सोम राजन्) सौम्य गुण सम्पन्न और उनके द्वारा प्रकाशित होने वाले (इन्दो) सब को आनन्द के देने वाले (सोम) योगैश्वर्य युक्त मानव (धात्रा) सकल विश्व को धारण करने वाले परमात्मदेव के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए (परिष्कृतः) आन्तरिक शुचिता से सम्यक् प्रकार से युक्त होकर (इन्द्राय) योग से उत्पन्न होने वाले परमैश्वर्य की सिद्धि के लिए (परिस्रव) तू अपना खून पसीना एक कर अर्थात् अत्यन्त पुरुषार्थ करने वाला बन।

९४. सत्यमुग्रस्य बृहतः संस्रवन्ति संस्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ९।११३।५

(उग्रस्य बृहतः सत्यम्) महान् शक्तिशाली तेजस्वरूप महतो महीयान् परमात्मदेव अपनी व्यापकता से परम धाम में रमण करते हैं और जहाँ (संस्रवाः स्रवन्ति) उनकी आनन्द वारि की अजस्र धाराएं प्रवाहित हैं (सं यन्ति रसिनो रसाः) और दिव्य मादकता के भण्डार उस सोम देव की अनुपम मादकता छाई हुई है। (ब्रह्मणा पुनानः हरः) अपने पवित्र ज्ञान से मानव को पवित्र बनाने वाले और उसके

सर्व कल्मषों को दूर करने वाले (इन्दो) हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! (इन्द्राय परिस्रव) अपने इस उपासक को दिव्य सम्पदा से युक्त करो।

९५. यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन्।
प्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ९।११३।६

(यत्र ब्रह्मा सोमे महीयते) जिस दिव्य आनन्द युक्त परमात्मा में ज्ञान, भक्ति, कर्म व विज्ञान युक्त मानव महत्त्व को प्राप्त होता है (पवमान इन्दो) हे निज जीवन को पवित्र करने की कामना वाले दैवी सुख सम्पन्न (छन्दस्यां वाचं वदन्) पूर्ण निर्भय हो स्वतन्त्रता पूर्वक वेदवाणी को बोलता हुआ (सोमेन आनन्दं जनय) अध्यात्म-विद्या, योगाभ्यास और प्रभुभक्ति द्वारा अपने अन्दर आनन्द की दिव्य धारा प्रवाहित करता (ग्राव्णा) अमृत जल की वर्षा करने वाले मेघ के समान तू (इन्द्राय परिस्रव) परमैश्वर्य युक्त मोक्ष के आनन्द की प्राप्ति के निमित्त तू सब साधनों को सम्यक् प्रकार से उपलब्ध कर।

९६. यत्रज्योतिरजस्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ९।११३।७

(पवमान इन्दो) हे अविद्यादि क्लेशों का नाश करने वाले परम पवित्र आनन्द स्वरूप प्रभो! (यत्र) जिस आपके दिव्य स्वरूप में (अजस्रं ज्योतिः) निरन्तर दिव्य ज्योतिः जगमगा रही है (यस्मिन् लोके) ज्ञान द्वारा लक्षित आपके जिस दिव्य लोक में (स्वः हितम्) चिरन्तन सुख की दिव्य धारा प्रवाहित है (तस्मिन् अक्षिते अमृते लोके) उस अविनश्वर दिव्य आनन्द के धाम में जहां जरा मृत्यु आदि की पहुँच तक नहीं है (मां) वहां मुझ अपने उपासक को (इन्द्राय धेहि) परमैश्वर्य से युक्त बनने के लिए धारण कीजिये और (परिस्रव) सब ओर मुझ पर दिव्य आनन्द वारि की वर्षा कीजिये।

**९७. यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥**

९।११३।८.

(इन्दो) हे आनन्द के दाता प्रभो ! (यत्र वैवस्वतः राजा) जिस आप में आध्यात्मिक तेज का सूर्य प्रकाशमान हो रहा है (यत्र दिवः अवरोधनम्) जिस आप में अज्ञानान्धकार का क्रीडन नहीं है (यत्र अमूः यह्वतीः आपः) तथा जिस आप में कारणरूप जीवनप्रद वायु सतत प्रवाहित है (तत्र माम् अमृतं कृधि) उस अपने दिव्य धाम में मुझे मुक्ति वा आनन्द प्रदान करो (इन्द्राय परिस्रव) और इस परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त आप मुझ को निश्चय ही उपलब्ध होवो ।

**९८. यत्रानुकामं चरणं त्रि नाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥**

९।११३।९.

(इन्दो) हे परम ज्योतिःस्वरूप प्रभो ! (यत्र अनुकामं चरणं) जिस आप के आनन्द धाम में दिव्य आत्माएँ स्वच्छन्द गति से रमण करती हैं (त्रिनाके) आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक त्रिविध दुःखों से शून्य उस धाम में (त्रिदिवे) जहाँ आप में वैश्वानर, तैजस् एवं प्रज्ञान रूपी तीनों ज्योतियां अन्तर्हित हैं (यत्र) तथा आपके जिस मुक्ति धाम में (दिवः ज्योतिष्मन्तः लोकाः) दिव्य ज्योतिः से युक्त साधना सम्पन्न सिद्ध योगी जन विचरण करते हैं (तत्र) ऐसे उस दिव्य धाम में (माम् अमृतं कृधि) मुझ अपने उपासक को अमृतत्व प्रदान करो (इन्द्राय परिस्रव) और दिव्य आनन्द रस से तृप्त करो ।

**९९. यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥**

९।११३।१०.

(यत्र कामाः निकामाः) आपके जिस दिव्य आनन्दमय मोक्षधाम में मानव की सब कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं (च) और (यत्र

ब्रध्नस्य विष्टपम्) जहां प्रकाशमान सूर्यों के सूर्य का दिव्य तेज छाया हुआ (च) और (यत्र स्वधा च तृप्तिः) जहाँ जीवात्मा अपने चिरन्तन शुद्ध बुद्ध चेतन स्वरूप से पूर्ण तृप्ति को प्राप्त होता है (तत्र) अपने उस दिव्य धाम में (इन्दो) हे परमैश्वर्य के दाता प्रभो ! (माम् अमृतं कृधि) मुझ अपने उपासक को दिव्य अमरता प्रदान करो और (इन्द्राय परिस्रव) दिव्य आनन्द से परितृप्त करो ।

१००. यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रा-
येन्दो परिस्रव ॥ ९।११३।११

(इन्दो) हे सर्वानन्द युक्त जगदीश्वर ! (यत्र) आपके जिस परम पवित्र आनन्द स्वरूप में (आनन्दा च मोदाः) सम्पूर्ण हर्ष (मुदः प्रमुदः आसते) दिव्य मादकता निश्चय विचित्र मादकता सरूरे वहदानियत उपलब्ध होती है (यत्र) और जहां (कामस्य कामाः आप्ताः) जीवात्मा की सर्व दिव्य कामनाओं की पूर्ति होती है (तत्र) उस दिव्य धाम में (माम् अमृतं कृधि) मुझे दिव्य आनन्द रस से संयुक्त कर दो और (इन्द्राय परिस्रव) सर्वविधि मुझे दिव्य ऐश्वर्य से युक्त कर दो ।

वैदिक विचारधारा भूमंडल पर फैलानी जिन्हें इष्ट हो—
जो ऋषि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों को
मूर्त्त रूप देना चाहें—वे

"दयानन्द-संस्थान" [पंजीकृत ट्रस्ट] को शक्तिशाली बनाएं

"दयानन्द-संस्थान" प्रत्येक संभव उपाय से धरती के प्रत्येक मन-मन्दिर पर वेद-ज्ञान की पताका लहराने हेतु कृत संकल्प है।

लक्ष्य पूर्ति के लिए आज ही 'दयानन्द-संस्थान' [पंजीकृत ट्रस्ट] के सदस्य बनिए

१००१)	प्रति वर्ष	देकर	"संरक्षक-सदस्य"
५०१)	"	"	"पोषक-सदस्य"
२५१)	"	"	"प्रेरक-सदस्य"
१०१)	"	"	"संचालक-सदस्य"
५१)	"	"	"दाता-सदस्य"
२५)	"	"	"सहायक-सदस्य"
११)	"	"	"प्रचारक-सदस्य"

आप का सहयोग ही हमारी शक्ति है।

विनीत
भारतेन्द्रनाथ
अध्यक्ष
दूरभाष : ५६६६३९
दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

स्तुता मयां वरदा वेंद

चौंदयन्तां पावमानी द्वि

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कं

विंणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्य

व्रंजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व०१९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।